अंक : ११०

# कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

## कहानियां

डॉ. रूपसिंह चंदेल

पुन्नी सिंह

डॉ. पद्मा शर्मा

डॉ. प्रदीप अग्रवाल

डॉ. विवेक द्विवेदी

## आमने-सामने

कुंवर प्रेमिल

## सागर-सीपी

डॉ. विष्णुचंद्र शर्मा

१५ रूपये

अप्रैल - जून २०१०

अप्रैल-जून २०१०
(१९७९ से प्रकाशित)

# कथाबिंब

**प्रधान संपादक**
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
**संपादिका**
मंजुश्री
**संपादन सहयोग**
प्रबोध कुमार गोविल
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
**आजीवन** : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
**वार्षिक** : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
**Naresh Mittal**, Gerard Pharmacy,
903 Gerard Avenue, Bronx NY 10452
Tel : 718-293-2285, 845-304-2414 (M)

●**"कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध** ●
**www.kathabimb.com**

e-mail : kathabimb@yahoo.com
(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.)

***एक प्रति का मूल्य : १५ रु.***
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
**(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)**

## क्रम

### कहानियां

।। ७ ।। वह चुप हैं ! / **डॉ. रूपसिंह चंदेल**
।। ११ ।। एक और एकलव्य / **पुन्नीसिंह**
।। १७ ।। इज़्ज़त के रखवाले / **डॉ. पद्मा शर्मा**
।। २४ ।। एक डॉक्टर की मौत / **डॉ. प्रदीप अग्रवाल**
।। २७ ।। मंथन / **डॉ. विवेक द्विवेदी**

### लघुकथाएं

।। १६ ।। राशिद ख़फा है / **आनंद बिल्थरे**
।। ३० ।। गुम हुए रिश्ते / **राजकमल सक्सेना**
।। ३३ ।। तीन लघुकथाएं / **कुंवर प्रेमिल**
।। ४५ ।। अंतर्रात्मा / **अशफाक "कादरी"**
।। ५० ।। ख़ुशी का सबब / **डॉ. सीमा शाहजी**

### कविताएं /ग़ज़लें

।। १० ।। धन की पूजा होय ! / **गाफिल स्वामी**
।। २३ ।। दो ग़ज़लें / **सच्चिदानंद "इंसान"**
।। ५० ।। व्यस्तता / **पंकज शर्मा**
।। ५१ ।। पिसता आम आदमी / **जयदीप पाल "दीप"**

### स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।। ३१ ।। "आमने-सामने" / **कुंवर प्रेमिल**
।। ३८ ।। "सागर-सीपी" / **डॉ. विष्णुचंद्र शर्मा**
।। ४४ ।। "बाइस्कोप"( *सविता बजाज* ) / **डॉ. धर्मवीर भारती**
।। ४६ ।। पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण चित्र : डॉ. अरविंद
*(अपनी छटा बिखेरता अमलताश : फतेहगढ़, मई २०१०)*

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

# कुछ कही, कुछ अनकही

**"कथाबिंब"** कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका है अतएव यह स्वाभाविक है कि हमारा "इंफ़ेसिस" कहानी पर अधिक हो. अच्छी कहानी में कौन-कौन से तत्व हों इसको लेकर अनेक चर्चाएं-बहसें हुई हैं और आगे भी होती रहेंगी. पहली कहानी से लेकर आज तक ऐसा कोई भी कथ्य नहीं शेष होगा जिस पर कहानी न लिखी गयी हो. लेकिन विषयवस्तु या कथ्य का सीधा-सीधा निरूपण ही कहानी लेखन नहीं है. न ही कुछ घटनाओं को एक क्रम में रख देना कहानी लेखन में आता है. उपयुक्त कथ्य के साथ प्रस्तुतीकरण, शैली और भाषा का सही मिश्रण ही "कहानी" को जन्म देता है. "परफेक्ट" या पूर्ण कहानी वह है जिसके शीर्षक से लेकर अंतिम पंक्ति तक, एक भी शब्द का हेर-फेर कर पाना संभव न हो. हमारे पास प्रकाशनार्थ जितनी कहानियां आती हैं उनमें से करीब २५ प्रतिशत ही स्वीकृत हो पाती हैं. वापस लौटायी जाने वाली हर कहानी पर टिप्पणी करना मुमकिन नहीं है. कई बार लेखक सूचित करते हैं कि लौटायी गयी कहानी किसी अन्य पत्रिका में छप गयी. इसके लिए क्या कहा जाये. प्रत्येक पत्रिका की अपनी आवश्यकता और नीति होती है. फिर, हम यह भी तो दावा नहीं करते कि "कथाबिंब" से वापस हुई कहानी अन्यत्र कहीं नहीं प्रकाशित हो सकती!

●

अब इस अंक की कहानियों के बारे में कुछ.... प्रत्येक अंक में प्रस्तुत कहानियों की बानगी देने के पीछे एकमात्र यही अभिप्राय रहता है कि पाठकों को कहानी के मूल कथ्य का इंगित भर मिल जाये जिससे उनके मन में कहानी को पढ़ने की जिज्ञासा उत्पन्न हो. अंक की पहली कहानी *"वह चुप हैं !"* के लेखक डॉ. रूपसिंह चंदेल जाने-माने रचनाकार हैं. आज किसी भी क्षेत्र में आदमी अपने पद का दुरुपयोग करने में पीछे नहीं रहता, चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र ही क्यों न हो. कहानी में, एक प्रोफ़ेसर अपनी छात्रा का शारीरिक शोषण करता है लेकिन अंततः परिस्थिति पूरी तरह बदल जाती है. पुन्नीसिंह की कहानी *"एक और एकलव्य"* छद्म साहित्यकारों पर व्यंग्य मात्र ही नहीं है वरन आज के साहित्यकारों का कच्चा चिट्ठा भी पेश करती है. अगली कहानी *"इज़्ज़त के रखवाले"* (डॉ. पद्मा शर्मा) समाज के हाशिये पर समझे जाने वाले तबके का बयान है कि आधे-अधूरे लोग भी किसी से कम नहीं. किन्हीं परिस्थितियों में वे समाज के रखवाले भी बन जाते हैं. डॉ. प्रदीप अग्रवाल की कहानी*"एक डॉक्टर की मौत"* एक चिकित्सक के कर्तव्य बोध और सामान्य सामाजिकता, जिसके तहत वह दुर्घटना में हताहत व्यक्ति को बचा नहीं पाता, के मध्य उहापोह का वर्णन है. *"मंथन"* (डॉ. विवेक द्विवेदी) सेवानिवृत्ति के पश्चात पिता और पुत्र के मध्य खींचातानी की कहानी है लेकिन इस बार पुत्र से पिता हारता नहीं है बल्कि वह पहले जैसा ही गरिमापूर्ण जीवन बिताने में समर्थ है.

●

तीन महीनों की अवधि में कुछ नया घटेगा या कहीं कोई ख़ास परिवर्तन दृष्टिगोचर होगा इसकी हमें उम्मीद नहीं करना चाहिए. सब तरफ घटाटोप अंधेरा है. कोई भी ऐसी संस्था नहीं है, चाहे वह सीबीआई हो, न्यायपालिका, इनकम टैक्स या पुलिस विभाग, जिसका दुरुपयोग आज राजनीतिक हितों के लिए नहीं किया जा रहा हो. हर दिन एक नया घोटाला सामने आता है, "सत्यम" व "मात्य्स" को लेकर बहुत हो-हल्ला हुआ पर अभी तक कुछ पता नहीं लग पाया है कि क्या माजरा है ? "रॉ" की माधुरी गुप्ता कुछ दिनों समाचारों में छायी रहीं, पर आगे क्या कार्यवाही हुई, कुछ पता नहीं. रक्षा के सामान की ख़रीदी के भी कई घोटाले सामने आये हैं. "नरेगा" की बहती गंगा में भी डुबकी लगा कर अनेक छोटे-बड़े अधिकारी मालामाल हो रहे हैं. आज से १५-२० साल पहले देश के पास धन की बेहद कमी थी. समय पर विदेशी कर्जे का ब्याज चुका पाना भी मुश्किल था. लेकिन भला हो मई १९९८ में किये गये नाभिकीय विस्फोटों का कि प्रतिबंधों का असर न पड़े यह सोचकर विदेश में रहने वाले भारतीय काफ़ी विदेशी मुद्रा भेजने लगे. इसके साथ ही भूमंडलीकरण में दी गयी रियायतों के कारण भी अनेक विदेशी कंपनियों ने भारत को एक बहुत बड़े बाज़ार के रूप में देखना शुरू किया. इससे भी काफ़ी धन आना प्रारंभ हुआ. इसके चलते कई भारतीय सुंदरियों को विश्व-सुंदरियों का ताज पहनाया गया. आज देश के पास पर्याप्त विदेशी मुद्रा है, इसके अलावा भी पैसों की किसी प्रकार की कमी नहीं है. रोज सरकार करोड़ों-अरबों रुपयों की योजनाओं की घोषणा करती है. बड़े-बड़े "कॉन्क्लेव्स" किये जाते हैं, पुरस्कार दिये जाते हैं. लेकिन स्थिति वही ढाक के तीन पात. ग़रीब और ग़रीब होता जा रहा है और अमीरों की संख्या में भी लगातार वृद्धि हो रही है. मध्य वर्ग सिकुड़ता जा रहा है. यही हाल रहा तो बहुत शीघ्र देश में दो ही वर्ग रह जायेंगे - अमीर और ग़रीब.

घने बादलों के मध्य ज्यों कभी-कभी एक रुपहली रेखा दिख जाती है.... राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के संबंध में यहां बताना ज़रूरी लग रहा है. हर प्रदेश में ग़रीबी रेखा के नीचे के काफ़ी लोगों को इस योजना से सीधे लाभ मिल रहा है. क्रेडिट कार्ड के आकार और प्रकार के स्वास्थ्य बीमा बायोमेट्रिक कार्ड, परिवार के मुखिया के बायें-दायें अंगूठों की छाप की पहचान अंकित करके लोगों को दिये जा रहे हैं. पंजीकरण के लिए मात्र ३० रु. देने होते हैं. कार्ड कहां से और कैसे मिलेंगे इसके विज्ञापन जगह-जगह पर गांवों-क़स्बों में दिखायी देते हैं. चिकित्सकों का भी पंजीकरण बड़ी संख्या में किया जा रहा है. एक कार्ड पर परिवार के किन्हीं पांच सदस्यों को वर्ष में ३०,००० रु. तक का निशुल्क इलाज़ होता है. कार्डधारी किसी भी पंजीकृत डॉक्टर के पास जा सकता है या फिर किसी पंजीकृत अस्पताल में. किसी भी स्टेज पर पैसों का आदान-प्रदान नहीं होता. इसलिए भ्रष्टाचार की संभावना भी शून्य है. इस सारे काम के लिए कंप्यूटर की मदद ली जाती है. शीघ्र ही सरकार योजना का दायरा बढ़ाने पर भी विचार कर रही है. ग़रीबी की रेखा से कुछ ऊपर, रिक्शा-चालक, टैक्सी चलाने वाले, बढ़ई, खोमचेवाले, घर पर काम करने वाली महरियां, मजदूर आदि रोजंदारी पर काम करने वालों को भी इस बीमा योजना के अंतर्गत लाने के प्रयास किये जा रहे हैं.

कुछ गैर-सरकारी संस्थाएं भी अच्छा काम कर रही हैं. ऐसी ही एक संस्था ने ६५ घरों के एक बहुत ही सुदूर क्षेत्र के गांव को चुना और वहां सौर्य ऊर्जा के माध्यम से घर-घर बिजली पहुंचायी. यह एक ऐसा गांव था जहां आसानी से पहुंचा नहीं जा सकता था. इन दोनों उदाहरणों से यह संकेत मिलता है कि यदि इच्छा शक्ति हो तो बहुत कुछ करना संभव है.

वर्ष १९८४ में दो बहुत ही मर्मांतक घटनाएं हुईं. इंदिरा गांधी की हत्या के बाद हुए सिख दंगों में लगभग ३,००० लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया. कहा गया कि जब कोई बड़ा वृक्ष गिरता है तो कई छोटे-मोटे पेड़ उसकी चपेट में आ जाते हैं. आज २६ सालों बाद भी किसी को सजा नहीं सुनायी गयी, न ही निकट भविष्य में इसकी कोई संभावना है. जबकि देश का वर्तमान प्रधानमंत्री स्वयं एक सिख है. मनमोहन सिंह जी ने हाल में, एक प्रेस कॉन्फ्रेंन्स में कहा कि उन्हें अभी बहुत से काम करना बाकी है. और कामों का तो पता नहीं पर राहुल गांधी को गद्दीनशीन करना उनके एजेंडा में अवश्य है.

दूसरी घटना हुई भोपाल गैस रिसाव कांड की जिसमें १५,००० लोग मारे गये. यह हादसा किसी परमाणु बम विस्फोट दुर्घटना से कम नहीं था. यूनियन कार्बाइड कंपनी के संयत्रों से निकली गैस जहां भी गयी तबाही मचाती गयी. बहुत से लोग तो नींद में ही मर गये. जहां गैस का प्रभाव कुछ कम था बच्चे, जवान, वृद्ध सभी को कुछ न कुछ शारीरिक विकृतियां हो गयीं. कई गैर-सरकारी संस्थाएं निरंतर इन लोगों के लिए आज भी कार्य कर रही हैं. अभी, इतने सालों के पश्चात कुछ सरकारी मुलाजिमों को दो-दो साल की सजा सुनायी गयी. वारेन एंडरसन जो असली मुलजिम था उसे कुछ ही घंटों के अंदर विशेष विमान से दिल्ली पहुंचाया गया और वहां से अमरीका भागने में पूरी सहायता की गयी. यह कल्पना करना मुश्किल नहीं है कि बिना तात्कालीन मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह या प्रधानमंत्री राजीव गांधी की सहमति और मंजूरी के ऐसा होना कतई संभव हुआ होगा! काफ़ी सालों तक मुआवजे का मुकदमा अमरीका में चलता रहा. जितनी राशि मांगी गयी थी अंततः उससे तिहाई राशि को मंजूर कर लिया गया. यह राशि लगभग ४५० बिलियन डॉलर थी. शुरू-शुरू में कुछ लोगों को मुआवजा अवश्य मिला लेकिन अब तक भी गैस से प्रभावित अधिकांश लोगों को मुआवजा नहीं मिल पाया है क्योंकि कोई स्पष्ट नीति निश्चित नहीं हो पायी है, जबकि इतने सालों में अमरीका से प्राप्त मुआवजे की शेष राशि, ब्याज मिलाकर कई गुना हो गयी है.

कुछ दिन पूर्व, दिल्ली में कोबाल्ट-६० की छड़ों को कबाड़ियों के पास मिलने की ख़बर ने सबको एकदम चौंका दिया. पता चला कि दिल्ली विश्वविद्यालय के कुछ वैज्ञानिकों ने अपनी प्रयोगशाला में रखे कबाड़ को बेचा था. उन्हें यह जानकारी नहीं थी कि कबाड़ में कोबाल्ट-६० जैसा ख़तरनाक पदार्थ भी हो सकता है. यह पदार्थ मानव निर्मित है और परमाणु-भट्टी में ही बनाया जाता है तथा इसकी अर्धायु बहुत अधिक है, यानि बरसों तक "स्रोत" जानलेवा किरणें निकालता रहता है. नियंत्रित उपयोग से इससे कैंसर का इलाज भी किया जाता है. इस घटना से सबक लेकर हमें गंभीरता से सोचना होगा कि देश की बिजली की आवश्यकता के लिए भविष्य में हम न्यूक्लीय विद्युत संयंत्रों पर कितना निर्भर कर सकते हैं. आतंकवाद और नक्सलवाद से पार पाने में हम पूरी तरह विफल हैं. इन्हीं शक्तियों ने या कुछ बाहरी ताकतों ने यदि कभी एक भी न्यूक्लीय संयंत्र पर हमला बोल दिया और सावधानियों व सुरक्षा के लाख उपायों के बावजूद भोपाल कांड जैसा कुछ घट गया तो क्या होगा ? राष्ट्र का हित किसी एक व्यक्ति की प्रतिष्ठा या किसी गठबंधन सरकार के चलने या न चलने से हमेशा ही बड़ा रहेगा.

अरविंद

# लेटर बॉक्स

❖ 'कथाबिंब' (१०९) का अंक मिला. पत्रिका का अद्योपांत अध्ययन किया. सबसे पहले तो मैं आपको इस बात की बधाई देना चाहता हूं कि १९७९ से नियमित आप इसे निकाल रहे हैं, बिना व्यतिक्रम के. जबकि पूंजीपतियों के हौसले पस्त हो गये. सारिका, धर्मयुग और दिनमान जैसी पत्रिकाएं हिंदी जगत से विलुप्त हो गयीं. इससे यह साफ़ जाहिर होता है कि पत्रिका निकालना एक व्यवसाय नहीं, बल्कि सेवा है. और सेवा में हानि और लाभ गौण होता है. आपका धैर्य इसका प्रमाण है. ज्ञान रंजन जैसा व्यक्ति 'पहल' जैसी पत्रिका इसलिए बंद कर देता है कि सीमित साधनों से ऊंचे आदर्शों की पूर्ति नहीं हो पाती. बहरहाल, 'कथाबिंब' का नियमित प्रकाशन सुखद अनुभूति देता है.

किसी भी पत्रिका का प्रवेश द्वार उसका संपादकीय होता है. अंक का संपादकीय पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि आप मानवीय सरोकारों से पूरी तरह लवरेज़ हैं. आपकी चिंता राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अतल गहराइयों में जाकर सूक्ष्म विश्लेषण करती है. मसलन आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी आम आदमी की जो समस्याएं हैं, जैसे ग़रीबी, बेरोज़गारी, बिजली, पानी, आतंकवाद, नक्सलवाद और कश्मीर में निरंतर जारी घुसपैठ से लेकर पाकिस्तान से अपने रिश्तेदारों से मिलने के बहाने आनेवाले नागरिकों पर सरकार की पैनी दृष्टि का न होना, जैसे मुद्दों पर संपादक महोदय सीधा प्रहार करते हैं. इस गरज से कि कभी भारतीय नुमाइंदों की नज़र पड़े. यद्यपि अजमल कसाब का निर्णय हो चुका है, फिर भी वह देश के लिए चिंता का विषय है. संपादक की जो जीवन दृष्टि है उससे यह साबित होता है कि कलाकार, साहित्यकार या बुद्धिजीवी दार्शनिक या चिंतक भर नहीं है, अपितु अपने समय के सच के साथ निरंतर मुठभेड़ भी कर रहा है. तरीका अपना उसका है. यह बात इस संपादकीय से प्रमाणित होती है.

कहानी क्रम में तेलुगु कहानी- 'मुन्नी' हृदयस्पर्शी कहानी लगी. तस्नीम की कहानी 'वादियों का दर्द' एक जीवंत कहानी लगी. सविता बजाज भी निरंतर लिख रही हैं. कम शब्दों में बहुत बड़ी बात कहती हैं. रील लाइफ़ के अंदर के सच को रियल तरीके से प्रस्तुत करती हैं. पूरा अंक पठनीय और संग्रहणीय लगा. आशा करता हूं कि पत्रिका इसी तरह निरंतर सरिता की तरह बहती रहेगी.

**विवेक द्विवेदी**

*✉ राजीव मार्ग, निराला नगर, रीवा (म. प्र.) ४८६००२.*

❖ 'कथाबिंब' का अंक-१०९ प्राप्त हुआ. पत्रिका का अंक मुझे पहली बार देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, आभार. हिंदी की अन्य पत्रिकाओं से अधिक इसमें विविधता है. कहानियां, लघुकथाएं, कविताएं/ग़ज़लें लगभग सभी प्रशंसनीय हैं. इस पत्रिका के स्तंभ भी अच्छे बन पड़े हैं. अस्सी के दशक में जब मैं मुंबई में था, तब के मेरे दो वरिष्ठ साथी आदरणीय श्री विश्वनाथ सचदेव जो मुझे मेरे लेखन में प्रोत्साहित करते रहते थे और दूसरी सविता बजाज. सागर-सीपी स्तंभ में श्री कैलाश सेंगर से उनकी अंतरंग बातचीत खुले दिल की है और सविता बजाज का 'बाइस्कोप' स्तंभ फ़िल्मी गीतकार सुधाकर शर्मा जी के बारे में संस्मरण अच्छा है.

**हरमन चौहान**

*✉ १७/३६९० अंबे कॉलोनी, सेक्टर १४, गोवर्धन विलास, उदयपुर-३१३००१*

❖ अंक १०९वां, जनवरी-मार्च १० का मिला. मनोयोग से आद्योपांत पढ़ गया. अब पढ़ने-लिखने योग्य आंखों की रोशनी हो गयी है.

आप कहानियों का चयन ही नहीं करते, उनके क्रमों के निर्धारण में आपकी दक्षता सराहनीय है. कृषकाय पत्रिका काफ़ी रोचक और पाठकों की प्रिय पत्रिका बन गयी है. आप इसमें सागर समो देते हैं. जसविंदर शर्माजी की कहानी 'समर्पण' ने रुला दिया. इस अंक में ज्ञान वर्माजी की कहानी 'वह कल नहीं आयेगा' मुद्दों पर आधारित कुशल हाथों से बुनी कहानी है. तारिक असलम 'तस्नीम' साहब की कहानी 'वादियों का दर्द' एक भावनात्मक, संवेदनशील, पेंचीदा, गंभीर

सियासी मुद्दे को बेबाक और जिस संजीदगी से आसानतर तौर पर कहानी की शक्ल में ढाला है, काबिले तारीफ़ है. मां पात्र के जरिए उन्होंने जिस सच्चाई को रखा है, कहानी को श्रेष्ठ कहानी बना देता है. तहे दिल से शुक्रिया अदा करता हूं. अन्य कहानियां भी अच्छी हैं. लघुकथाएं अच्छी लगीं. गाफ़िल स्वामी के दोहे 'बोना गन्ना छोड़ दो' बहुत अच्छे लगे. कविताएं अच्छी हैं. ग़ज़लों में रंजना वर्मा एवं केवल गोस्वामी की ग़ज़लें अच्छी लगीं.

**सच्चिदानंद 'इंसान'**
✉ जी.पी.वर्मा लेन, मुंदीचक,
सहारा मिशन स्कूल, भागलपुर (बिहार)

❖ 'कथाबिंब' का नया अंक प्राप्त हुआ. हर अंक की तरह भरपूर सामग्री है. कहानियां और कविताएं बहुत अच्छी हैं. विश्वनाथ जी का इंटरव्यू विशेष लगा.

'कुछ कही, कुछ अनकही' में आपने आम आदमी से जुड़े सवालों को बख़ूबी उठाया है. दंतेवाड़ा, पाकिस्तानी आतंकवाद सहित 'ट्विटर', 'फूटैज', 'ब्रेकिंग न्यूज' आदि पर आपकी टिप्पणियां बहुत सटीक लगीं. आपका संपादकीय बहुत गंभीर और वैचारिक आंदोलन की दिशा में महत्वपूर्ण है. हमारा समय ऐसी विसंगतियों से गुज़र रहा है, इन्हें रेखांकित किया जाना समय की मांग है. आपका साधुवाद!

**डॉ. दमोदर खड़से**
✉ *बी-५०३-५०४, 'हाई ब्लिस, कैलाश जीवन के पास, धायरी, पुणे ४११०४१*

❖ 'कथाबिंब' का जन.-मार्च १० अंक मिला, एतदर्थ कृपया आभार स्वीकारें.

इस अंक में कैलाश सेंगर की श्री विश्वनाथ सचदेव जी से बातचीत अच्छी लगी. लघुकथाएं भी बहुत अच्छी लगीं. सविता बजाज तो लाजवाब हैं ही. श्री ओमप्रकाश मिश्र कंचन- 'आमने-सामने' में बहुत भारी पड़े हैं. सौतेली मां वाला गीत दिल को छूनेवाला है, पत्रिका दीर्घायु हो, यही शुभेच्छा.

**अनंत श्रीमाली**
✉ *बिल्डिंग ७५, हमलोग सोसा., ए १०२, तिलक नगर, चेंबूर, मुंबई-४०० ०८९.*

❖ 'कथाबिंब' जनवरी-मार्च १० अंक समय पर प्राप्त हुआ. प्रसन्नता हुई कि 'कथाबिंब' अब नियत समय पर प्रकाशित हो रहा है. लेटलतीफ़ी साहित्यिक पत्रिकाओं की अपनी नियति है, किंतु 'कथाबिंब' इससे निजात पा गया है यह प्रसन्नता का विषय है. ...'सागर-सीपी' के अंतर्गत वरिष्ठ कवि एवं पत्रकार श्री विश्वनाथ जी से कैलाश सेंगर की भेंटवार्ता तथा 'बाइस्कोप' के अंतर्गत गीतकार सुधाकर शर्मा के विषय में अत्यधिक जानकारी मिली. किंतु इस अंक का संपादकीय मुझे अंदर तक झकझोर गया. देश की वर्त्तमान भयावह स्थिति के लिए जिम्मेवार इन नेताओं, आकाओं को क्या कहा जाय! सचमुच आज प्रतीक्षा है जयप्रकाश नारायण जैसे सबल नेतृत्व की जो इस विनाशकारी व्यवस्था की चूलें हिला दे. मुझे लग रहा है 'कथाबिंब' इसकी पृष्ठभूमि तैयार कर रहा है. आमीन!!

**उदय शंकर सिंह 'उदय'**
✉ *गीताबंरा (दुर्गास्थान), सहबाजपुर, उमानगर, मुजफ्फरपुर (बिहार)*

❖ 'कथाबिंब का १०९ वां मिला. लघु आकार में भी सार्थक-सारगर्भित रचनाएं आकर्षित करती हैं, इनकी विविधता मनोहारी है. गद्य-पद्य दोनों स्तरीय हैं. यह देखकर सुख मिला कि पत्रिका लेखकों में और पाठकों में समान रूप से लोकप्रिय है, निश्चित रूप से इसमें आपका वर्षों का अनुभव, जीवनदृष्टि और निष्ठा पूरी तरह परिलक्षित होती है. आपने अपने संपादकीय में कुछ समसामयिक प्रश्न उठाये हैं. वे विचारणीय हैं. इन पर लगातार बात होनी चाहिए. लेखन का यह दायित्व भी होना चाहिए.

**केवल गोस्वामी**
✉ जे.३६३ सरिता विहार,
मथुरा रोड, नयी दिल्ली-११००७६

❖ 'कथाबिंब' १०९ जन.-मार्च १० का अंक ज्ञान वर्मा की कथा 'वह कल नहीं आयेगा', बाज़ार और निष्ठा के द्वंद्व की रचना है. इस बाज़ार समय में हरीसिंह प्रलोभन में नहीं आता और अपनी निष्ठा पर कायम रहता है. इस अर्थकाल में आस्था की जीत बताकर आपने मूल्यों की पुनर्स्थापना की है. तारिक असलम 'तस्नीम' की कहानी 'वादियों का दर्द' में असद आतंक का रास्ता नहीं पकड़ता है यह उसके विवेक की जय है. जसविंदर शर्मा की कहानी 'समर्पण' में देव का अंत में चेक फाड़ना उसके हृदय परिवर्तन की

कथा है. यह मनोहर के त्याग की रचना तो है ही. के. वरलक्ष्मी की तेलुगु कहानी 'मुन्नी' पढ़कर प्रसाद की 'मधुआ' का स्मरण हो आता है. 'मधुआ' में बच्चे के कारण शराबी का रूपांतरण हो जाता है, मुन्नी में भिखारी बच्ची को सब गहने पहनाकर छोड़ देता है. कहां वह गहने व मुन्नी दोनों को बेचने की सोच रहा था. इन चारों कहानियों का अंत सकारात्मक है इससे आपके कथा चयन की दृष्टि का बोध होता है.

आपका संपादकीय बहुत सारे संदर्भ लिये हुए है. कविताओं में पंकज शर्मा की 'मैं अक्सर हैरान होता हूं' ने प्रभावित किया है. ये आज के समय का आईना है, कैलाश सेंगर की बातचीत से विश्वनाथ सचदेव को निकट से जानने का अवसर मिला, ग़ज़लों में देवेंद्र कुमार पाठक की ग़ज़ल असरदार है. दोनों पुस्तक समीक्षाएं प्रभावी हैं. सुनीता ने सुधा अरोड़ा और सुरेश पंडित ने मेयार सनेही के साथ न्याय किया है. केवल गोस्वामी की दूसरी ग़ज़ल तो ग़ज़ल ही नहीं है, रंजना वर्मा की ग़ज़ल को देवेंद्र की ग़ज़ल के साथ रख सकते हैं. लघु कथाओं में एक भी भरती की नहीं है, सभी में कथाओं के बीज हैं.

**हितेश व्यास**

✉ *१ मारुति कॉलोनी, पंकज होटल के पीछे, नयापुरा, कोटा (राज.)३२४००१*

❖ 'कथाबिंब' अंक १०९ मिला. आपके संपादकीय विचार अदभुत एवं प्रभावी होते हैं, जहां कहानियों का व्यापक विश्लेषण पाठक को सहजता से कथातत्व को ग्रहण करने में सहायक होता है, वहीं कहानी की गुणवत्ता को भी व्याख्यायित करता है.

२१वीं सदी की महत्ता एवं व्यापकता का भी अच्छा विश्लेषण हुआ है. 'आम आदमी और नयी सदी' एक सार्थक विवेचन आपने अपने ढंग से किया है. सर्वश्री ज्ञान वर्मा, जसविंदर शर्मा एवं अमर स्नेह की कहानियां मार्मिक एवं सहज प्रभावी हैं. साथ ही नरेंद्र कौर छाबड़ा एवं मानव की लघुकथाएं भी पठनीय हैं.

इस बार के अंक में ग़ज़लों का चयन आपकी काव्यात्मक पहचान का सहज प्रमाण है.

**मदन मोहन उपेंद्र**

✉ ए-१०, शांतिनगर, मथुरा (उ. प्र.)

❖ 'कथाबिंब' का जन.- मार्च १० अंक मिला. मैं तो पहले स्थायी स्तंभ पढ़ता हूं. इस बार भी वही किया. 'सागर-सीपी' में विश्वनाथ सचदेव से वार्तालाप महत्वपूर्ण है. भाई कैलाश सेंगर ने अंतरंग बातचीत की है. उन्होंने पत्रकारिता के स्तंभ रहे विशिष्ट व्यक्तियों के बारे में बहुत मननीय बातें बतायीं. सविता बजाज बहुत सूक्ष्म में लिखती हैं. कुछ विस्तार देना चाहिए. कंचन जी भी बहुत अच्छे रहे. पुस्तक समीक्षाएं भी संतुलित हैं. 'कुछ कही, अनकही' में बहुत कुछ कहा है आपने जो विचारोत्तेजक है. 'वातायन' में नानाजी पर पूरा प्रकाश पड़ा है. सर्वथा पठनीय.

**चंद्रसेन विराट**

✉ १२१, वैकुंठधाम कॉलोनी, आनंद बाजार के पीछे, इंदौर-४५२०१८

❖ 'कथाबिंब' का जन.- मार्च १० अंक प्राप्त हुआ. हमेशा की तरह बिना किसी लाग-लपेट और तामझाम के 'टू दि प्लाइन्ट' आपका संपादकीय पढ़ने ही नहीं विचार करने लायक है. कहानियों, लघुकथाओं की पठनीयता और आमने-सामने, सागर सीपी, वातायन और बाइस्कोप जैसे स्तंभ 'कथाबिंब' की विशिष्ठता हैं. हां! इस बार ग़ज़लें प्यास नहीं बुझा पायीं. अंक के साथ-साथ 'कथाबिंब' की यात्रा के इकतीस वर्ष पूरे होने की हार्दिक बधाई.

**राजेंद्र तिवारी**

✉ तपोवन, ३८-बी, गोविंद नगर, कानपुर-२०८००६

❖ 'कथाबिंब' का जनवरी/मार्च २०१० अंक काफ़ी रोचक है. जसविंदर शर्मा की कहानी 'समर्पण' भारतीय गांवों के मानस-जन की आंतरिक तस्वीर सही अर्थों में उकेरती है. यह कहानी पढ़ कर कमलेश्वर जी के दौर की 'सारिका' में प्रकाशित होने वाली कहानियों की याद ताज़ा हो आयी. तेलुगु कहानी 'मुन्नी' थोड़ी-सी अनावश्यक लंबी होते हुए भी पाठक को झकझोरने में सक्षम है. अधिकांश लघुकथाएं इस बार भी अपेक्षाकृत कमज़ोर रहीं. 'बाइस्कोप' स्तंभ के अंतर्गत सविता बजाज जी के संस्मरण 'कथाबिंब' के लिए एक उपलब्धि की तरह हैं.

**कृष्ण शर्मा**

✉ १५२/११९, पक्की ढक्की, जम्मू १८०००१

कहानी

# वह चुप हैं !

वह चुप हैं.....बिल्कुल ही चुप !

वैसे कम बोलना उनकी आदत है. यह आदत उन्होंने विकसित की है. कभी वह अधिक बोलते थे जिस पर उन्होंने सप्रयास नियंत्रण पा लिया. वह जानते थे कि कम बोलने के लाख लाभ होते हैं. साथी मुंह ताकते रहते हैं कि वह कुछ बोलें लेकिन वह चुप रहते हैं. दूसरों को सुनते हैं और उनके कहे को अपने अंदर गुनते हैं. अवसरानुकूल कुछ शब्द उच्चारित कर देते हैं....एक-एक शब्द पर बल देते हुए. वह अपने वाक्यों की असंबद्धता की चिंता नहीं करते. चिंता करते हैं अधिक न बोलने की. अधिक बोलने को अब वह स्वास्थ्य ख़राब होने के कारणों में से एक मानते हैं. स्वास्थ्य को वह व्यापक अर्थ में लेते हैं जो शारीरिक ही नहीं सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक.....व्यापक संदर्भों से जुड़ता है.

वह कम अवश्य बोलते हैं लेकिन बिल्कुल चुप उन्हें पहली बार देखा गया है. मिलने आने वालों को उनकी पत्नी शालिनी दरवाज़े से ही टरका देती है यह कहकर कि सुशांत जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है.

'शालिनी जी, दो दिन पहले सुशांत जी बिल्कुल स्वस्थ थे...' मिलने आये एक युवक के कहने पर वह बोली, 'कल से स्वास्थ्य ख़राब है. छींक रहे हैं और गला भी ख़राब है.'

'शालिनी जी', युवक बोला, 'वह स्वयं न बोलें, बस मुझे सुन लें. उनके लिए एक आवश्यक सूचना है.'

शालिनी ने उस अपरिचित युवक को घूरकर देखा, 'आप मुझे बता दें. मैं उन्हें बता दूंगी.'

युवक ने शालिनी की ओर अख़बार बढ़ाते हुए कहा, 'परसों शाम जनाधार लेखक संघ की ओर से प्रख्यात साहित्यकार कामेश्वर जी की मृत्यु पर शोक सभा आयोजित थी. सुशांत जी भी बोले थे, बोलते हुए उन्होंने कहा था कि कामेश्वर जैसे व्यक्ति इसलिए हमारी श्रद्धांजलि के हक़दार हैं क्योंकि उन्होंने थोड़ा-बहुत कुछ लिखा है. वर्ना उनका जीवन इतना अराजक....चरित्र इतना कमजोर....'

'आप कहना क्या चाहते हैं?' शालिनी ने युवक को नज़रें तरेरते हुए टोका.

अविचलित युवक ने 'आज़ाद भारत' अख़बार बढ़ाते हुए कहा, 'इसमें सुशांत जी के कथन की भर्त्सना की गयी है. मुझे जनाधार लेखक संघ के सचिव व्याकुल कुमार जी ने यह कहकर भेजा है कि सुशांत जी 'आज़ाद भारत' को यह कहते हुए अपना खंडन भेज दें कि उन्होंने वैसा नहीं कहा था. रिपोर्टर ने उनकी बात को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया है.

।। डॉ. रूपसिंह चंदेल ।।

'जी शुक्रिया. मैं उन्हें बता दूंगी.' आज़ाद भारत की प्रति युवक से लेती हुई शालिनी बोलीं और युवक को दरवाज़े पर खड़ा छोड़ दरवाज़ा बंद कर लिया.

□

वह चुप हैं और चुप होने का कारण पूछने पर भी उन्होंने शालनी को नहीं बताया.

एक और समय वह चुप रहने लगे थे, लेकिन बिल्कुल चुप नहीं थे. तब उनके स्कूटर ने उनके अंदर उथल-पुथल मचा रखी थी. चार वर्षों से वह उनके गैराज़ में खड़ा था. बेटे के लिए उसे ख़रीदा गया था. बेटा उससे कॉलेज जाता. ....दिल्ली कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, जहां से वह इंजीनियरिंग कर रहा था. इंजीनियरिंग कर वह चार साल पहले एम. एस. करने अमेरिका चला गया और एम. एस. कर वहीं नौकरी करने लगा. बेटे के जाने के बाद स्कूटर को गैराज़ में बंद करने के बाद न उन्हें गैराज़ खोलने की आवश्यकता अनुभव हुई और न ही स्कूटर का खयाल आया. दरअसल बेटे के लिए उन्होंने नहीं, शालिनी ने उसे ख़रीद दिया था. उनके यहां स्कूटर है यह अनुभूति उन्हें तब होती जब कभी-कभार उसे वह गेट के बाहर खड़ा देखते.

“”

वैसे होता यह था कि जब वह सुबह नौ बजे सोकर उठते बेटा कॉलेज के लिए जा चुका होता था. शालिनी विदेश मंत्रालय में सहायक निदेशक राजभाषा थी और वह भी कार्यालय जा चुकी होती थी.

सुशांत, जिनका पूरा नाम सुशांत राय था, उठते, अंगड़ाई लेते, खिड़की से झांककर सड़क की आमद-रफ़्त का जायजा लेते हुए दाढ़ी पर हाथ फेरते, जिसकी वह बहुत साज-संवार करते थे. फिर बिस्तर छोड़ किचन में जाते, जहां शालिनी थर्मस में उनके लिए चाय बनाकर रख जाती थी.

चाय पीते हुए वह दिन में अपने कार्यक्रम पर विचार करते. अख़बार पर सरसरी दृष्टि डालते और विशेष रूप से दुर्घटनाएं, हत्या, बलात्कार और लूट-पाट की ख़बरें पढ़ते. ये ख़बरें उन्हें चिंता में डाल देतीं, वह अपने को असुरक्षित अनुभव करते....और घर, शालिनी और बेटे अखिल को लेकर चिंतित हो उठते.

बलात्कार शब्द पर उनकी नज़रें अधिक देर तक टिकतीं. उस समाचार को वह गौर से पढ़ते और मन में विचलन अनुभव करते रहते. विचलन अनुभव करते हुए उन्हें बरबस सुहासिनी की याद हो आती. याद तब अधिक आती जब उससे मिले उन्हें दो-तीन सप्ताह बीत चुके होते.

□

सुहासिनी उनकी छात्रा थी....उनके निर्देशन में पी-एच.डी. कर रही थी. उसके रजिस्ट्रेशन के बाद उन्होंने उसकी इस प्रकार उपेक्षा की कि एक दिन वह रो पड़ी थी. वह काम करके लाती. वह देखते....देखते नहीं बल्कि गंभीरतापूर्वक देखने का अभिनय करते और कुछ देर बाद रजिस्टर उसकी ओर सरका देते, ‘बात बनी नहीं सुहास.....दोबारा लिखो....’ और वह कुछ पुस्तकों के नाम बता देते, ‘इन्हें पढ़ो, दिशा मिल जायेगी.’

एक-एक चैप्टर को पांच-छः बार उन्होंने उससे लिखवाया. दो वर्षों में सुहासिनी केवल तीन चैप्टर ही लिख पायी. समय समाप्ति की ओर तेज़ी से बढ़ रहा था और यही वह चाहते थे. चौथे चैप्टर को जब पांचवी बार उन्होंने रिजेक्ट किया सुहासिनी के धैर्य का बांध टूट गया और वह फफक पड़ी, ‘सर, मैं पी-एच. डी. नहीं करूंगी.’

**‘कथाबिंब’ के नियमित रचनाकार एवं हितैषी**

‘च्च....च्च.....ऐसा नहीं सोचते सुहास.’ सोफ़े पर उसकी ओर खिसक गये थे वह और अपनी उंगलियों से सुहासिनी के आंसू पोछते हुए बोले थे, ‘तुम प्रतिभाशाली हो....समझदार भी... लेकिन पता नहीं क्यों नासमझी करती जा रही हो....अब तक कब की थीसिस सबमिट हो चुकी होती. कहीं एडहॉक पढ़ा रही होतीं.’

सुहासिनी का रोना बंद हो गया था. वह सोचने लगी थी, ‘क्या सच ही वह प्रतिभाशाली है...लेकिन सर ने कहा....अभी कहा.....’

सुहासिनी सोच में डूब गयी.....वह कुछ और परिश्रम करेगी.....उसे प्राध्यापक बनना है.....वैसा ही करेगी जैसा सुशांत सर कहेंगे...

और उसको वही करना पड़ा जैसा सुशांत राय ने कहा.... शालिनी दफ़्तर जा चुकी थी और बेटा कॉलेज ....तब से सुहासिनी को अकेले में वह सहवासिनी कहकर पुकारने लगे थे.

सुहासिनी ने पी-एच. डी. की और एक कॉलेज में उनके सहयोग से एडहॉक पढ़ाने लगी. उसे रेगुलर होना है और वह सोचती है कि उसके सर यानी सुशांत सर....उसके रेगुलर होने में भी सहायक होंगे....इसीलिए वह दस-पंद्रह दिनों में उनके घर आती है....कॉलेज जाते समय.....शालिनी के कार्यालय जाने के बाद. लेकिन उस दिन ऐसा नहीं हुआ. शालिनी को ज्वर था. वह कार्यालय नहीं गयी थी.

सुहासिनी घर आये और सुशांत अपने को नियंत्रित रख लें, संभव नहीं था. चार वर्षों बाद उन्हें गैराज़ की याद आयी थी. बमुश्किल से चाबी खोज पाये थे वह. ज्वर के कारण शालिनी अर्द्ध चेतनावस्था में थी.

सुशांत कठिनाई से गैराज़ का ताला खोल पाये. क्योंकि उसमें जंग लग चुकी थी. गैराज़ में जमी धूल की पर्त और दीवारों में लगे जालों ने एक बार तो उन्हें हतोत्साहित किया था. लेकिन उसका विकल्प उन्होंने खोज लिया था. 'चटाइयों का आविष्कार शायद ऐसे अवसरों के लिए ही हुआ था,' उन्होंने उस समय सोचा था. लेकिन स्कूटर बाधक बन गया था. छोटे-से गैराज़ का अधिकांश स्थान उसने घेर रखा था. उतावलेपन के उस क्षण उस बाधा से मुक्ति आवश्यक थी. मुक्ति उसे हटा देने से ही संभव थी. लेकिन चार वर्षों से एक ही जगह अड़े स्कूटर को हटाना उनके लिए किसी पहाड़ को हटाने जैसा था. भले ही उन्होंने दुनिया को चलाया था, लेकिन स्कूटर चलाना तो दूर, आने के बाद उसे हाथ भी नहीं लगाया था. उसे हटाने से शालिनी के उठ आने का खतरा भी था. उसे खिसकाकर उन्होंने धूल और जालों की परवाह न कर धूलभरे फर्श पर किसी तरह आधी-अधूरी चटाई बिछा ली थी. ऐसे अवसरों में असुविधाओं में सुविधा खोज लेना उनकी फितरत थी.

लेकिन स्कूटर उनके दिमाग में अटक गया था. वह सड़क पर दौड़ने के बजाय उनके दिमाग में दौड़ने लगा था. उसे घर से बाहर कर देने का निर्णय उन्होंने कर लिया था. उसे बेच दें या किसी को दे दें इस द्वंद्व में वह कई दिनों तक फंसे रहे थे. बेचने से अधिक किसी को दे देना उन्हें अनेक दृष्टिकोनों से उपयुक्त लगा था. लेकिन कुछ मुफ़्त देना उनके सिद्धांत के विरुद्ध था. मुफ़्त पाने वाले की आदतें ख़राब हो जाती हैं. वह श्रम से बचने लगता है....इससे न उसका विकास होता है और न देश का. 'मुफ़्त' देने-पाने की नीति उनके प्रगतिशील विचारों के विरुद्ध थी. अपने प्रगतिशील विचारों के प्रतिपादन के लिए उन्होंने अपने कुछ सिद्धांत तय किये थे और उन सिद्धांतों का वह कठोरता से पालन करते थे.

सोच-विचारकर उन्होंने 'जनाधार लेखक संघ' से जुड़े अपने एक छात्र को स्कूटर देने का निर्णय किया. संघ की परिकल्पना में उनकी भी भूमिका रही थी, जिससे उनके कुछ छात्र भी उससे जुड़े हुए थे. समय-समय पर वे संघ की ओर से धरना-प्रदर्शन कर लेते, जंतर-मंतर पर सरकार के विरुद्ध नारे लगा लेते. संघ से जुड़े लोग प्रसन्न हो लेते कि वह सरकार की दुर्नीतियों के विरुद्ध आवाज़ बुलंद कर रहे थे जबकि संघ के पदाधिकारी इससे सरकारी तंत्र पर दबाव बनाकर अपने हित साध लेने से प्रसन्न होते थे.

एक दिन राजीव प्रसाद नाम के उस युवक को उन्होंने घर बुलाया. उसकी पढ़ाई, समस्याओं आदि की चर्चा कर कहा, 'राजीव तुम्हें एक प्रॉजेक्ट पर काम करना है.'

'कैसा प्रॉजेक्ट सर?'

'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श' विषय पर कुछ काम करना है.

'सर....' राजीव के स्वर में कंपन था.

'मैं तुम्हारी सहायता करूंगा. यही कोई दो-ढाई-सौ पृष्ठों की पुस्तक....पर्याप्त पारिश्रमिक मिलेगा. पांच दशकों के महत्वपूर्ण उपन्यासों की सूची मैं लिखवा दूंगा. प्रत्येक दशक के आधार पर पांच अध्याय और छठवां अध्याय उपसंहार.'

'सर.....मैं.....'

'अरे घबड़ाते क्यों हो? मैं हूं न !' दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए सुशांत राय बोले, 'इसके लिए कुछ परिश्रम करना होगा...कुछ पुस्तकालयों की खाक भी छाननी होगी....उसके लिए तुम मेरा यह स्कूटर ले जाओ, केवल कार्य करने तक के लिए ही नहीं....इसे मैं तुम्हें दे रहा हूं.'

राजीव उनके चेहरे की ओर देखने लगा तो वह बोले, 'ऐसे क्यों देख रहे हो! भई मुफ़्त में नहीं दे रहा हूं....काम करवा रहा हूं. तुम प्रतिभाशाली हो और प्रतिभाशाली लोग मुझे प्रिय हैं. मैं उनके लिए कुछ भी करने को तैयार रहता हूं.....'

'सर....' राजीव कसमसाया. वह सोच रहा था कि उसके लिए अपनी एम.फिल. का शोध-प्रबंध ही भारी पड़ रहा है. ऊपर से इतना भारी-भरकम काम, कैसे कर पायेगा वह!'

'इसे दो महीनों में पूरा करना है....फिर अपने एम.फिल. का काम करते रहना...अभी उसके लिए पर्याप्त समय है.' और उन्होंने राजीव की ओर स्कूटर की चाबी उछाल दी थी. चाबी वह नहीं थाम पाया तो दाढ़ी में मुस्कराते हुए वह बोले, 'कैच करने में कमज़ोर हो?'

राजीव के घर से स्कूटर घसीटकर बाहर निकालते ही उन्होंने गेट बंद कर लिया था. उसके बाद उन्होंने यह जानने की कोशिश नहीं कि कि चार वर्षों में पिचक

चुके टायरों और पथरा चुकी पेट्रोल की टंकी की रबड़ ने उसे कितना दुखी किया था. मैकेनिक ने उसकी जेब से पांच सौ रुपये निकलवा लिये थे. जो कि उसके पास नहीं थे. उसने एक साथी से रुपये उधार लेकर मैकेनिक को दिये थे.

लेकिन ज़िंदगी में पहली बार उनके साथ ऐसा हुआ कि सोची-समझी योजनानुसार किये गये कार्य में उन्हें असफलता मिली थी. राजीव प्रसाद नामक छात्र द्वारा तैयार पुस्तक उनके नाम से प्रकाशित होनी थी. उसने एक दशक के उपन्यासों पर एक चैप्टर लिखकर उन्हें दिखा भी दिया था, लेकिन उसके बाद वह ग़ायब हो गया था. उन्हें ज्ञात हुआ कि बंगलौर की एक बहुराष्ट्रीय बैंक में उसे नौकरी मिल गयी थी और वह पढ़ाई छोड़ गया था. उन्हें इस बात का अफ़सोस था कि उन्होंने पहली बार ग़लत घोड़े पर दांव लगाया था.

□

लेकिन अब उनके चुप होने का यह कारण नहीं था.

हुआ यह कि दो दिन पहले लंबे समय के बाद सुहासिनी उनके यहां आयी. शालिनी दफ़्तर जा चुकी थी. सुहासिनी को देख वह प्रसन्न हुए. प्रसन्न इसलिए कि उसके आने के लिए कितनी ही बार उन्होंने उसके मोबाइल पर फ़ोन कर उससे आग्रह-अनुग्रह किया था. उसे प्रेम भरे एस. एम. एस. किये थे.

सुहासिनी का उन्होंने ऐसे स्वागत किया मानों वर्षों बाद मिले थे. लेकिन सुहासिनी में उन्हें न वह उत्साह दिखा और न औत्सुक्त. घर में प्रवेश करते ही वह हिमखंड की भांति सोफ़े पर ढह गयी थी. वह देर तक उसकी ओर ताकते रहे थे चुप, फिर पूछा था, 'सुहास तुम चुप क्यों हो? तुम्हारी चुप्पी मुझे बर्दाश्त नहीं हो रही.'

सुहासिनी उन्हें घूरती रही अपनी बड़ी-बड़ी तीक्ष्ण आंखों से. उन्होंने फिर जब टोका, वह रो पड़ी. उन्हें उसके साथ का पहला दिन याद हो आया. तब भी वह ऐसे ही रोयी थी और सोफ़े पर उसके निकट खिसक उन्होंने उसके आंसू पोछे थे. उन्होंने उसी प्रकार उसके आंसू पोछने चाहे तो सुहासिनी ने उनका हाथ झटक दिया, 'आपने मुझे बर्बाद कर दिया.' वह चीखी.

'मैं ऽ ऽ ने....?'

'हां....आपने .....मैं गर्भवती हूं.....'

## धन की पूजा होय

✍ गाफिल स्वामी

*धन बल औ मद का करें, सभी लोग मिसयूज ।*
*स्वारथ में सब लिप्त हैं, परमारथ है फ़्यूज ।।*
*परमारथ है फ़्यूज, किसी को सच ना भाये ।*
*जीने को हर एक, राह खोटी अपनाये ।।*
*'गाफिल स्वामी' कहें - दुःखी हैं अब अच्छे जन ।*
*धन की पूजा होय, कमाओ जी भर के धन ।।*

लालपुर, इगलास,
जिला : अलीगढ़ (उ. प्र.)-२०२१२४.

'तुम .....तुम.....' उनकी जुबान लड़खड़ा गयी थी. किसी प्रकार अपने को संभाल वह बोले,

'इसमें परेशान होने की क्या बात....मैं तैयार होता हूं...किसी डॉक्टर के पास.....'

'नहीं....'

'फिर....' वह भौंचक थे.

'आप शालिनी जी को तलाक दें और मुझसे विवाह....'

'तुम होश में तो हो न सुहासिनी....?'

'पूरे....होश-ओ-हवाश में कह रही हूं....'

'क्या प्रमाण है कि यह मेरा ही गर्भ है?' वह भड़क उठे थे.

'प्रमाण क्या है....यह आपको भी पता है....' सुहासिनी ने सधे स्वर में कहा.

वह धप से सोफ़े पर बैठ गये थे सिर थामकर. उनके सामने डॉ. विप्लव त्रिपाठी का चेहरा घूम गया था.... राजनीतिशास्त्र विभाग के डॉ. विप्लव त्रिपाठी.... उनकी एक एम. फिल. की छात्रा ने ऐसा ही आरोप लगाते हुए उनके द्वारा उसे मोबाइल पर भेजे गये एस. एम. एस. के प्रमाण विश्वविद्यालय प्रशासन और इन्क्वारी कमीटी के समक्ष प्रस्तुत किये थे और आरोप सिद्ध होने के बाद डॉ. त्रिपाठी को प्रोफेसर पद से विश्वविद्यालय ने बर्खास्त कर दिया था.

सुहासिनी जा चुकी थी....कब उन्हें पता नहीं चला था.

और तभी से वह चुप हैं.

बी-३/२३०, सादतपुर विस्तार,
दिल्ली-११० ०९४.
मो.- ९८१०८३०९५७

**कहानी**

# एक और एकलव्य

उसने उस दुकान के ऊपर लगे बोर्ड को पढ़ा. उस पर लिखा था, कविराज सैलून!

उसे पढ़ते ही उसके मन में कुछ-कुछ गुदगुदी जैसी हुई. उन दिनों उसके साथ ऐसा अक्सर होता था. वह जब किसी नयी जगह पर पहुंचता तब उस जगह की ख़ूबियां या ख़ामियों से उसे कोई ज़्यादा मतलब नहीं रहता, लेकिन वहां की विचित्रता में वह ख़ूब रुचि लेता था. हां, तो उस दुकान के बोर्ड को उसने रुक-रुक कई बार देखा और जब उतने से मन नही भरा तो उस सैलून के अंदर प्रवेश कर गया. उसने अंदर जाकर जो कुछ देखा उसे देखकर मन ही मन ख़ुश हुआ. वहां पर एक मंझोले स्तर के हेअर सैलून से संबंधित औजार और अन्य चीज़ें बड़े करीने से सजी हुई थीं और सैलून का मालिक वैसा ही साफ़-सुधरा, धुला-मजा सा मधुर मुस्कान के साथ मानो उसी की अगवानी के लिए अपनी एक कुर्सी से लगा खड़ा था.

उसने अपने हाथ में थामे कपड़े से एक बार फिर कुर्सी को साफ़ किया और उस पर उसको बैठने का इशारा किया. वह जब कुर्सी पर बैठ गया तब उसे याद आया कि वह कटिंग कराने के उद्देश्य से घर से नहीं निकला था, लेकिन इस सूरत में अब वहां से उठ कर जा भी नहीं सकता था. और हक़ीकत यह भी थी कि वहां से अब उठकर जाने का मन भी नहीं कर रहा था. अलबत्ता अब वह अपने मन की इस गुत्थी को सुलझाने में लगा था कि क्या कारण हो सकता है जो यह इतना छोटा और यहां के मेन मार्केट से अलग-थलग यह सैलून और ऐसी आकर्षक यहां की सजावट! और उससे भी ख़ास बात यह कि सैलून-मालिक का निहायत मधुर व्यवहार. इस सबका कोई न कोई कारण तो अवश्य होना चाहिए?

वह उसी कारण में उलझा हुआ था और तभी सैलूनवाले ने बड़ी सहजता से उसकी शर्ट का कॉलर मोड़ दिया. सामने की ओर एक साफ़ सफ़ेद कपड़ा फैला दिया, जिसका ऊपरवाला भाग उसके गले में दोनों ओर से सावधानीपूर्वक लपेट दिया. उतनी ही सावधानी से उसका चश्मा उतारकर सामने अपने औजारों के बीच रख दिया. अब उसने एक नलकी लगी साफ़ पानी की बोतल उठायी और पीछे की ओर से उसके बालों को तर करने के उद्देश्य से उन पर पहले धीरे से दायां हाथ फेरा, लेकिन शायद उसी वक़्त कुछ याद हो आया और उसने बोतल जस की तस रख दी. उसे कनपटी की ओर से सैलूनवाले ने फिर गौर से देखा और बोला- 'लगता है आप इस शहर में शायद नये आये हैं.'

उसने उसकी ओर देखा और कहा- 'हां तुमने सही समझा, अभी तो एक महीना भी पूरा नहीं हुआ है मुझे आये!'

*// पुन्नीसिंह //*

'क्या काम करते हैं?.... मेरा मतलब है, किस विभाग में आये हैं आप?'

उसने थोड़ा लटपटाते हुए पूछा. उसने पूछा तो उसने बता दिया कि वह यहां के डिग्री कॉलेज में ट्रांसफर पर आया है.

यह सुनकर उसके चेहरे पर ख़ुशी की एक नयी पर्त बिछ गयी. मुस्कराहट और भी गहरी हो गयी. बोला- 'यह तो बड़ी ख़ुशी की बात है. कॉलेज के कई प्रोफेसर यहीं कटिंग कराने आते हैं सर!... मैं भी उसी कॉलेज में पढ़ा हूं सर!'

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद हल्के संकोच के साथ वह फिर पूछने लगा- 'सर, बुरा न माने तो पूछूं, आपका नाम क्या है?'

'मेरा नाम तो प्रदीप है- प्रदीप चौधरी!'

'सर, आप कुछ लिखते भी हैं क्या?.... मेरा मतलब है कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास कुछ भी सर!'

प्रदीप चाहता तो उससे कह सकता था कि वह

कहानी और उपन्यास लिखता है, लेकिन उसने कुछ नहीं कहा.

उसने कुछ नहीं बोला तो फिर सैलून का मालिक बोला- 'मेरा नाम चंदन है सर- चंदन सविता. ... और... और मैं कविता लिखता हूं सर!'

अब की बार प्रदीप ने उसे गौर से देखा. कुछ ऐसे कि चंदन भी सकपका कर इधर-उधर देखने लगा.

'हां, सर! मैं कविता लिखता हूं और आपको अपनी एक छोटी सी कविता सुनाना चाहता हूं.... सुनेंगे सर!'

प्रदीप चौधरी उसे आश्चर्य के साथ देखने लगा. उससे पहले कभी किसी अपरिचित ने उसे कविता सुनाने का ऐसा आग्रह नहीं किया था. उसे उसका आग्रह थोड़ा अनूठा भी लगा और थोड़ा ऊटपटांग भी. लेकिन फिर भी वह कविता सुनने से मना नहीं कर पाया. उसने कह दिया- 'हां, अगर कविता जैसी कोई चीज़ हो तो मैं मना क्यों करूंगा सुनने से!'

बस फिर क्या था. उसने फौरन अपनी जेब टटोली और एक मुड़ा हुआ काग़ज़ का टुकड़ा बाहर खींच लिया और उसे खोल कर कविता पढ़ने लगा :

बहुद दिनों तक मोंड़ रोया
मोंड़ी रही उदास,
बहुत दिनों तक घरवाली
फटकी नहीं पास.....

'बस-बस, अब बंद करो भाई, बहुत सुन ली कविता. अब यह भी समझ में आ गया कि तुम इसी तरह से दूसरों की कविता मार-मार के कविराज बने बैठे हो!.... अब मेरी कटिंग करो, 'बाबा नागार्जुन की जेब तो तुमने ठीक ही साफ़ कर दी है.' मैंने कहा तो उसके चेहरे का रंग फीका पड़ गया.

लेकिन तब तक सैलून में दो-तीन ग्राहक और भी आकर बैठ गये थे. इसलिए फिर उसने प्रदीप से कुछ कहा नहीं. फौरन उसके बालों को पानी से तर करके काटने लगा.

वह बाल काट रहा था और प्रदीप यह अनुभव कर रहा था कि उसका हाथ सचमुच सधा हुआ है. न केवल उसकी कंघी-कैंची की हरकत बल्कि उसकी औजार उठाने की.... और रखने की हरकत, ग्राहक की एक बगल से दूसरी बगल में आने की हरकत... उस सब में भी एक तरह की लय थी. प्रदीप चौधरी को इस बात का भी संतोष था कि यह ठीक ही रहा कि वह कविता के कारण नाई से ज़्यादा नहीं उलझा. अगर ऐसा हुआ होता तो वह अभी उसके सिर पर कविता नहीं लिख रहा होता, बल्कि खड़तालें बजा रहा होता.

कैंची-कंघी के पश्चात फिर उसने छुरे का कौशल ठीक ही दिखाया.

पुन्नी सिंह

**१ अगस्त १९३९, उत्तर प्रदेश के मैनपुरी (अब फ़ीरोज़ाबाद) जिले के मिलावली गांव में; एम. ए., एम. कॉम.**

**लेखन** : कहानी, उपन्यास, नाटक.

**प्रकाशन** : नाटक- 'रेजांगला',
कहानी संग्रह- 'जंगल का कोढ़', 'क़ाफ़िर तोता', 'मोर्चा', 'जुम्मन मियां की घोड़ी', 'नाग फांस', 'जुगलबंदी', 'कयामत का दिन', 'गोलियों की भाषा', 'काना कौआ.'
उपन्यास- 'तिलचट्टे', 'पाथरघाटी का शोर', 'सहराना', 'त्रिया तीन जन्म', 'तोर रूप गजब'.
शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास- 'सेतुबंध', 'मंडली', 'वह, जो घाटी ने कहा.'

**संपादन** : 'वसुधा' पत्रिका का बहु-चर्चित दलित साहित्य विशेषांक, 'भारतीय दलित साहित : परिप्रेक्ष्य'

**पुरस्कार** : मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी का राष्ट्रीय गजानन माधव मुक्तिबोध पुरस्कार; म. प्र. साहित्य सम्मेलन का 'भवभूति अलंकरण.'

**विशेष** : कुल मिलाकर लगभग पौने दो सौ कहानियां, आठ उपन्यास, एक नाटक, लगभग दो दर्ज़न एकांकी और लघुनाटक और एक दर्ज़न से अधिक रेडियो नाटक.

**संप्रति** : म.प्र. शासन के उच्च शिक्षा विभाग के प्राध्यापक पद से सेवा निवृत्त. स्वतंत्र लेखन.

अंत में उसने सब औजार करीने से रख दिये. उसके आगे की ओर पड़ा हुआ कपड़ा कटे हुए बालों सहित सावधानीपूर्वक समेटा और बाहर जा कर बाल झाड़ आया. फिर अंदर आकर उसी कपड़े से उसकी गर्दन इत्यादि से लगे बाल साफ़ कर दिये. वह उसका संकेत पाते ही कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और अपनी जेब से निकाल कर एक बीस रुपये का नोट उसकी ओर बढ़ा दिया. लेकिन नोट देखते ही वह कुछ क़दम पीछे हट गया और बोला- 'नहीं, नहीं सर आप की कटिंग करने का मेहनताना हमें पहले ही मिल चुका है. आपने मेरी कविता सुन ली, बस हो गया..... आजकल इस सैलून में एक कटिंग का यही रेट चल रहा है सर!'

उसके बाद उसने अपने एक अन्य ग्राहक को बुला कर कुर्सी पर बिठा लिया था और उसके बाल काटने की तैयारी में लग गया था. लेकिन ठीक उसी समय प्रदीप चौधरी को अपने कॉलेज के स्टाफ रूम में एक दिन शायद इसी नाई के बारे में चल रही चर्चा याद हो आयी थी. एक प्राध्यापक महोदय उससे कह रहे थे कि जिस मकान में वह रहता है उसके सामने सड़क के उस पार जो कुछ नयी दुकानें बनी हैं उन्हीं में से एक चंदन नाई की है. वह नाई कविता लिखता है और जो कोई वहां कटिंग कराने जाता है, अगर वह उसकी एक कविता सुन ले तो वह कटिंग फ्री करता है.

प्रदीप चौधरी ने फिर उसे गौर से देखा और उसका हाथ पकड़कर उस पर बीस रुपये का नोट रख दिया और मुट्ठी भी बंद कर दी और ऊपर से जड़ दिया- 'देखो, कविता इतनी सस्ती चीज़ नहीं है जितनी तुमने समझ रखा है. उसके सृजन में भी श्रम लगता है.... शारीरिक न सही, लेकिन मानसिक श्रम तो लगता है. लेकिन मैं यहां कुछ दूसरी बात देख रहा हूं. तुम दूसरों को कविता मुफ़्त में सुनाते हो, उनसे अपने पेशेवर कौशल और श्रम के भी पैसे नहीं लेते. मेरी बात मानो तो ऐसी ग़लती फिर कभी भूल कर भी मत करना.'

इतना कह कर प्रदीप चौधरी ने उसके चेहरे को निहारा तो वहां लिखे कुछ सकारात्मक भाव पढ़कर वह ख़ुश हुआ, लेकिन फिर वहां वह रुका नहीं. फौरन वहां से चला आया.

कुछ दिनों पश्चात जब वह एक दिन अपने कॉलेज के स्टाफ रूम में कुछ अन्य प्राध्यापकों के साथ बैठा था, तब एकाएक वहां इस बात पर चर्चा चल पड़ी कि चंदन नाई ने अब कविता लिखना छोड़ दिया है. अब वह अपने सैलून में आनेवाले किसी व्यक्ति से कविता सुन लेने का आग्रह भी नहीं करता है. प्रदीप चौधरी देख रहा था कि वहां बैठे कुछ लोग इस विषय में बात करते हुए बेहद दुखी नज़र आ रहे थे. कुछ गुस्साये हुए से उसको निहार रहे थे. तभी उसके विभागाध्यक्ष डॉ. परमानंद नियोगी अपनी कुर्सी को उसके पास खींच लाये. वहां बैठते ही वे धीरे से उससे बोले- 'यहां लोग समझते हैं कि आपके कहने से चंदन सविता ने कविता लिखना छोड़ दिया है.'

उसने उन्हें चौंक कर देखा और कहा- 'अरे, वह मेरे कहने से कविता लिखना कैसे छोड़ सकता है भला. और फिर मैं तो उसके सैलून पर कटिंग कराने कुल जमा एक बार गया हूं!'

फिर थोड़ी देर तक वह प्रो. नियोगी को देखता रहा और फिर बोला- '....और फिर मेरी समझ में यह नहीं आता कि अगर उसने कविता लिखना छोड़ भी दिया तो हम लोग चिंतित क्यों हैं?.... उससे हमारा क्या जाता है?'

'अरे वाह, यह तो आप बड़ा अजीब-सा तर्क दे रहे हैं? हमारा कुछ जाता कैसे नहीं है? वह थोड़े ही दिनों में इधर के इलाके में पूरी तरह से स्थापित कवि घोषित हो गया था. न जाने कितने लोगों को वह कविता सुनाता था और लोग उसकी तारीफ़ के पुल बांधते थे. ये कुछ मामूली बात है?... और अपने कॉलेज के कई विद्वान प्रोफेसर उसकी कविता सुनकर उचित राय देते थे. जिससे उसे प्रोत्साहन मिलता था. उसकी कविता में सुधार होता था.'

'और उसके सैलून पर लोग मुफ़्त में कटिंग कराते थे, उसके बारे में आपने कुछ नहीं कहा....?'

यह बात प्रदीप ने थोड़े ऊंचे स्वर में कही थी और उसको सुनकर वहां बैठे कई लोगों के चेहरे लटक गये थे. और उसके विभागाध्यक्ष का चेहरा तमतमा गया था. वे फिर बोले- 'मुफ़्त में कटिंग कराने की बात नहीं है यह, आप यह भी तो सोचिए कि हम लोगों ने उसको कितना प्रोत्साहित किया है. अभी चार-पांच साल पहले तक उसे कोई नहीं जानता था और अब वह चंदन सविता से चंदन कविराज हो गया और उसका सैलून

सविता सैलून से कविराज सैलून हो गया है.... और इस शहर का बच्चा-बच्चा उसे जानता है. ये सब किसकी बदौलत हुआ है, सो बताओ!'

उनके कहने के ढंग और तमतमाये चेहरे को देखकर प्रदीप अपनी हंसी मुश्किल से रोक पाया और उसने फिर उन्हें दूसरे ढंग से समझाना चाहा- 'देखिए सर, हम लोगों की कुछ न कुछ इज़्ज़त अभी समाज में बनी हुई है और दूसरी बात यह भी है कि लोग जानते हैं कि हमको काफ़ी मोटी तनख़्वाह मिलती है. जरा सोचिए, अगर हम कोई बहाना बना कर किसी से नाजायज़ लाभ लेंगे तो लोग हमारे बारे में क्या सोचेंगे?.... आप की जानकारी में हम लोगों में कोई है, ऐसा जिसने कभी भी दस की जगह बीस रुपये उसे दिये हों और कहा हो कि ले, ये दस रुपये तेरे कटिंग करने के हैं और दस कविता सुनाने का इनाम है?'

उसकी बात सुनते ही प्रो. नियोगी का चेहरा एकदम विकृत हो गया. वहां बैठे लोगों में से अन्य कई के चेहरे तमतमा उठे थे. अगले दिन से कॉलेज स्टाफ के कई लोगों ने उससे बोलना तक बंद कर दिया था. देख-देख कर उसे घुटन हो रही थी. लेकिन एक-दो दिन के बाद उसने उन लोगों की बातों पर ध्यान देना ही छोड़ दिया था.

उसके कुछ दिनों बाद शहर में बहुत तेज़ बारिश हुई थी. लगभग बारह घंटे घनघोर बारिश में बीते थे और अगले दिन तक भी बूंदा-बांदी चलती रही थी. शहर के ज़्यादातर नालों में पानी न समा पाने के कारण प्रायः हर गली नाला और हर सड़क मानो नदी बन गयी थी. घरों, दुकानों और गोदामों में पानी भर गया था और शहर का पूरा जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो चला था. कुल मिलाकर बारिश के नाम से लोगों में भय व्याप्त हो गया था. अभी भी बूंदा-बांदी जारी थी. ठीक ऐसे समय में उस दिन दोपहर के वक़्त प्रदीप चौधरी के घर चंदन सविता आया था.

उसकी बैठक में मानो डरते-डरते उसने प्रवेश किया था और सोफ़े की गद्दी उठाकर उस पर बैठ गया था. अपने कुर्ते के अग्रभाग से अपना चेहरा पोंछ कर वह मानो शांति और सहजता की मूर्ति बना बैठा था. प्रदीप ने देखा तो हंसी आ गयी. वह उठ कर किचन में गया और पत्नी से चाय बनाने को बोल आया. लौट कर जैसे ही बैठक में आया वैसे ही चंदन मानो अपने आने के बारे में सफ़ाई देता हुआ बोला- 'दुकान में पानी भर गया था, उसी को निकालने आया था. ... अभी तो निकाल आया हूं लेकिन क्या पता, शाम तक फिर भर जाये. मेरी जानकारी में ऐसी बारिश पहले कभी नहीं हुई.'

वह कुछ-कुछ लटपटा कर बोल रहा और प्रदीप चौधरी मुस्कराता हुआ उसे रुक-रुक कर देख लेता था.

'.... यह सच है कि मैंने बाबा की कविता की एक तरह से चोरी की थी और यह भी सच है कि मैं लोगों की कटिंग मुफ़्त में करके उन्हें कविता सुनने को राजी करता रहा हूं, लेकिन मैं यह नहीं करता तो और क्या करता?..... आप नये-नये आये हैं. आप को पता नहीं है, यहां के समाज में ऊंच-नीच की भावना प्रबल है. हमारे जैसों को यहां कौन कविता लिखना सिखलायेगा? अगर अपने आप सीखने की कोशिश भी करें तो किसे पढ़ायें या सुनायें. इस हालत में हमारी नियति एकलव्य बनने के अलावा और कुछ हो ही नहीं सकती!'

उसने कुछ इस ढंग से कहा था कि प्रदीप चौधरी उसके दर्द को अनुभव करके उसे लगातार देखे जा रहा था. यद्यपि उसका मानना यह था कि अब पहले वाला ज़माना नहीं रह गया है. इस दौर में कोई आदमी इतना असहाय नहीं रह गया. उसे सामान्य परिस्थिति में कोई भी योग्यता हासिल करने से रोक नहीं सकता और अधिकांश मामलों में यह भी सिद्ध हुआ है कि अगर कोई बेहतर करता है तो उसको कोई ज़्यादा दिन तक नज़रअंदाज नहीं कर सकता है. वह यही सब कुछ चंदन को समझाना चाहता था लेकिन उससे पहले ही उसकी पत्नी चाय लेकर आ गयी. वह चाय के दो कप टेबुल पर रख कर फौरन चली भी गयी.

वह जब चाय पी रहा था तब प्रदीप ने उसे गौर से देखा. एक बार देख कर जब मन नहीं भरा तब रुक-रुक कर कई बार देखा और जब चाय पीकर खाली कप को टेबुल पर रख रहा था तब उसके हाथ की बड़ी-बड़ी और निहायत सुंदर उंगलियों को देखा. देखा और देखते ही देखते उन पर मोहित हो कर रह गया. अब उसे लगा कि इन उंगलियों से कलम लेकर न केवल अच्छी कविता लिखी जा सकती है, बल्कि अगर यही

उंगलियां यदि सितार के तारों पर सुनियोजित हरकत करने लगें तो अत्यंत मनोहारी ध्वनिबंध आकार ग्रहण करने लगें....

अबकी बार उसने गहरी सांस ली और प्रदीप से फिर बोला- 'अब मैंने कविता लिखना या किसी को सुनाना छोड़ दिया है सर!'

उसने कहा तो प्रदीप एकाएक चौंक गया. पता नहीं उसे ऐसा क्यों लगा कि जो आक्षेप उस पर उसके कॉलेज वाले प्रत्यक्षतः लगा रहे हैं वही आक्षेप मानो चंदन भी उस पर लगा रहा है... यही कि उसने मेरे कारण से कविता लिखना छोड़ दिया है.... लेकिन फिर भी प्रदीप उससे निहायत सामान्य तरीके से फिर बोला- 'लेकिन मेरी तो समझ में नहीं आता कि तुम कविता लिखना क्यों छोड़ रहे हो? सच में तुम अगर कोशिश करो तो बहुत अच्छी कविता लिख सकते हो!'

'अरे नहीं सर! आप मेरा मन बहलाने के लिए कह रहे हैं, जबकि आप जानते हैं कि मैंने कविता की चोरी की है. सिर्फ़ इतना ही नहीं, मैंने तो बाबा की नहीं बल्कि उसके अलावा भी कुछ अन्य लोगों की कविताएं मारी हैं.'

'मुझे यह तो नहीं मालूम कि तुमने बाबा के अलावा अन्य किसी को कविता मारी है, लेकिन एक बात मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि बाबा की कविता मारते वक़्त तुमने खासी हाथ की सफ़ाई दिखाई है और अगर उतनी ही सफ़ाई अपनी कविता लिखते वक़्त दिखाओ तो सच में तुम बेहतर कविता लिख सकते हो.'

इतना कह कर प्रदीप ने उसे निहारा. वह सोच रहा था कि इतने मात्र से उसका चेहरा खिल उठेगा और वह ख़ुशी-ख़ुशी उसकी दी हुई राय स्वीकार कर लेगा. लेकिन ऐसा कुछ हुआ नहीं. वह उसी तरह से उदासी ओढ़े उसकी बैठक से बाहर खुली छत पर झमाझम बरसते पानी को देखता रहा. प्रदीप को उसका रूप कतई अच्छा नहीं लगा.... फिर भी वह बोला - 'देखो, तुम शायद जानते नहीं होगे कि बाबा नागार्जुन कितने बड़े कवि हैं. और तुम तो यह भी नहीं जानते होगे कि उनकी जिस कविता की तर्ज़ पर तुमने कविता लिखी है उसका अनुवाद कई भाषाओं में हुआ है...'

'इस, इत्ती-सी कविता का अनुवाद...?'

अब आकर मानो उसकी तंद्रा टूटी और घोर आश्चर्य के साथ चंदन ने उससे पूछा. उसने भी फिर देर नहीं की और कह दिया -'हां, इसी कुछ पंक्तियों वाली कविता का अनुवाद दुनियां की कई बड़ी भाषाओं में हुआ है.'

प्रदीप चौधरी सोच रहा था कि अब यह कविता पर खुल कर बात करेगा. जो कुछ कविता के बारे में वह जानता होगा वह उसे बतायेगा और जो नहीं जानता होगा वह उससे पूछेगा, लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ. वह धीरे से बोला- 'अब कुछ भी सही, मैं कविता नहीं लिखूंगा!'

और वह उतने ही धीरे से उठ खड़ा हुआ. दोनों हाथ जोड़कर प्रदीप को नमस्कार किया और उसके घर की सीढ़ियां उतरने लगा.

उसके बाद काफ़ी समय बीत गया. प्रदीप एक तरह से भूल ही गया कि उसके घर के आगे सड़क के उस पार जो कविराज सैलून है उसके अंदर उसकी एक कहानी ने जन्म लिया था और वह फिर अकाल मृत्यु को प्राप्त हुई थी.

लेकिन फिर एक दिन मानो उसी कहानी का प्रेत जागृत हुआ. चंदन सविता एकाएक प्रदीप के घर आया और उसकी बैठक में आकर सोफ़े पर बैठ गया. वह दिन छुट्टी का दिन था और प्रदीप चौधरी दोपहर का खाना खाकर लेट गया था. थोड़ी नींद लेने के बाद वह उठा और अपने कमरे से निकल कर बैठक में आया तो वहां चंदन को सोफ़े पर बैठा पाया.

'सर! अब मैंने अपना विचार बदल दिया है, अब मैं कविता लिखूंगा!'

उसने उससे कहा, लेकिन प्रदीप ने उसे नज़र भर कर देख ज़रूर लिया. कहा कुछ नहीं.

चंदन ने उसे आश्चर्य के साथ देखा और फिर कहा- 'सर, आप यह नहीं पूछेंगे कि मैंने अपना विचार आख़िर क्यों बदल दिया है?.... खैर मत पूछिए, लीजिए मैं ख़ुद ही बता देता हूं.'

इतना कहकर उसने अपने कुर्ते की जेब से अख़बार का एक मुड़ा हुआ पृष्ठ निकाला और उसे सामने की मेज़ पर फैलाकर बोला- 'देखिए हुजूर, अख़बार के इस पेज पर एक कहानी छपी है...'

'हां, छपी है..... तो?' प्रदीप ने कहा.

'तो असली बात यह है हुजूर, कि इसी कहानी से मुझे आत्मज्ञान हुआ है.... और वह यह है कि जब

लघुकथा

# राशिद ख़फ़ा है !

✍ आनंद बिल्थरे

राजगढ़ पहुंचकर मैंने फ़ोन किया. पता चला कि राशिद की बीवी का एक्सीडेंट हो गया है और वह उसे लेकर अस्पताल गया है.

मैं सीधे अस्पताल पहुंचा. राशिद मुझे, ऑपरेशन कक्ष के बाहर बदहवास खड़ा मिल गया. उसके अनुसार बाज़ार से लौटते वक़्त, एक जीप बीवी को ठोकर मारकर निकल गयी थी. दोनों जांघों पर चोट थी. ख़ून बहुत निकल चुका था.

सहसा एक नर्स, कक्ष से बाहर निकली और दवाओं की पर्ची थमाते हुए कहा कि ख़ून का प्रबंध कीजिए जल्दी.

हम दोनों के पांव में पंख लग गये किंतु राशिद की बीवी के ग्रुप का ख़ून कहीं नहीं मिला. दानदाताओं में भी उस ग्रुप का कोई उपलब्ध नहीं था.

डॉक्टर ने कहा कि ख़ून नहीं मिलने की सूरत में, दोनों टांगें हमेशा के लिए बेकार हो जायेंगी. सहसा राशिद ने पूछा- 'रतन, तुम किस ग्रुप के हो?'

'ए. बी. निगेटिव!' मेरे मुंह से निकला.

चलो, अल्लाह ने सुन ली. अब, जल्दी से ख़ून दे दो.

'नहीं राशिद, मैं अपना ख़ून नहीं दे सकता. किसी भी कीमत पर नहीं.'

राशिद की आखों से मित्रभाव कपूर की तरह उड़ गया. उसने खींचकर मेरे गाल पर एक थप्पड़ मारा. मैं हथेली से अपना गाल छिपाये, बाहर आ गया.

आज, राशिद की बीवी, व्हील चेयर पर टांगें लटकाये, अपनी दोनों बच्चियों की परवरिश कर रही है. काश, मैं उसे समझा सकता कि मैं उसकी बीवी का दुश्मन नहीं था और नाही इसमें कोई धर्म-मजहब की दीवार आड़े थी. अब, उसकी बीवी, ज़िंदा तो है. एक एच. आई. वी. पॉजिटिव का ख़ून लेकर वह कितने दिन ज़िंदा रह सकती थी.

राशिद, आज भी मुझसे ख़फ़ा है.

प्रेमनगर, बालाघाट (म. प्र.)४८१८०१

आप चेख़व की जेब काट सकते हैं तो मैं बाबा की जेब साफ़ क्यों नहीं कर सकता. यानी कि जब आप चेख़व की कहानी मार कर कहानी लिख सकते हैं तो मैं बाबा की कविता मार कर कविता क्यों नहीं लिख सकता?'

उसकी बात सुनकर प्रदीप चौधरी जोर से हंसा. वह हंसा तो चंदन थोड़ा सहम गया.

प्रदीप ने फिर उसे समझाने की कोशिश की. बोला- 'यही बात तो मैं तुम्हें उस दिन समझा रहा था लेकिन तुम समझ ही नहीं रहे थे. ... चलो, अब समझे तो अब ही सही. लेकिन फिर भी असली बात समझना बाकी है. देखो, इस कहानी में मैंने चेख़व से केवल विषय वस्तु ली है, वह भी आंशिक, .... तुम चाहो तो कह सकते हो कि मसूर की दाल उनकी है. उसमें भी मैंने अपनी मूंग की दाल मिला दी है. बाकी नमक, मिर्च, गर्म मसाला, पानी, ईंधन .... सब कुछ मेरा है. लेकिन तुमने लगभग सब कुछ बाबा का ही लिया है.'

अबकी बार वह खिलखिला के हंसा. फिर एकाएक हंसी रोक कर बोला -'आपने ठीक कहा है. अब जब भी कभी ज़रूरत पड़ी तो थोड़ी दाल ही लूंगा, बल्कि कोशिश करूंगा कि उसकी भी ज़रूरत न पड़े.'

इतना कह कर वह उठ खड़ा हुआ और चलते-चलते मुस्करा कर बोला -'मैं काफ़ी समय से गुरू दीक्षा से इनकार करता रहा हूं, लेकिन आज पहली बार अनुभव हो रहा है कि उसका भी कुछ न कुछ महत्त्व ज़रूर है.'

'नहीं बच्चूराम, अगर तुमने वह महत्व स्वीकार कर लिया तो फिर एकलव्य बन जाना अवश्यंभावी है.'

प्रदीप चौधरी ने हंस कर कहा तो चंदन सविता ने उसकी बात काट कर फौरन कहा- 'नहीं सर एकलव्य बनना भी कोई बुरी बात नहीं है, बशर्ते कि हम अपने अंगूठे की रक्षा कर सकें. और मुझे उम्मीद है कि मैं वैसा अवश्य कर सकूंगा.'

और वह खिलखिलाता हुआ प्रदीप चौधरी के घर की सीढ़ियां उतरने लगा.

एफ-५५७, कमला नगर,
आगरा-२८२००५.
मो. ९४१०६३१९७४

कहानी

# इज़्ज़त के रखवाले

सारा क़स्बा सन्न रह गया.

पुलिस के जासूस लगातार तलाश रहे थे कि यह वारदात किसने की? लेकिन कहीं से कोई सूत्र नहीं मिल रहा था. बल्लू भी चकित था. जाने क्यों वह खो जाता है सांझ से, बार-बार कहीं अतीत में.

उसे लग रहा था कि इस वारदात का संबंध उस घर से तो नहीं ...?

उस घर से उनका रिश्ता तब पता चला था उसे, जब बृहन्नला सोफ़िया की टोली शादी का शगुन लेने ऐसे घर में गयी, जिस घर में उसने कभी जाते नहीं देखा. वे लोग श्रीलाल के घर को मंजिल बनाकर निकले थे उस दिन. दूर से ही ऐसे चिन्ह दिख रहे थे कि इस घर में तत्काल कोई ब्याह हुआ है. सोफ़िया की बातों से अंदाजा लगा था कि वह इस घर को बहुत निकट से जानती है. सोफ़िया ने ही किसी से कहा था कि आज श्रीलाल की ख़ुशी का पारावार नहीं है. उनके छोटे भाई विशंभर का विवाह जो हुआ था. अम्मा-बाबूजी की मृत्यु के बाद उन्होंने ही भाई को पाला और कोई तकलीफ नहीं होने दी. विशंभर अपने बड़े भाई श्रीलाल से उम्र में बहुत छोटा है, इसलिए उन्होंने उसे बेटे की तरह स्नेह दिया है.

घर में ख़ुशी का माहौल था. सब तरफ चहल-पहल और ख़ूब कोलाहल था. नयी बहू आ जाने से रौनक में और अधिक इज़ाफा हो गया था. आंगन में से ढोलक की थापों के साथ महिलाओं के गाने के स्वर गूंज रहे थे. बधाये और दादरे गाये जा रहे थे.....

*आज दिन सोने को महाराज,*
*सोने को सब दिन सोने की रातें*
*सोने के पलको धरइयो महाराज....*

बारात से लौटे रिश्तेदार समधियाने की खातिरदारी की तारीफ़ कर रहे थे शायद और सुन-सुनकर श्रीलाल का दिल बल्लियों उछल रहा था. रात की खुमारी अभी तक सबकी आंखों से उतरी नहीं थी... श्रीलाल का मन व्यवस्थाओं में उलझ रहा था कि अचानक बाहर तालियां पीटने की आवाज़ें सुनायी पड़ीं. स्त्री पुरुष के मिले-जुले अजीब से स्वरों के साथ तेज़ आवाज़ें सुनीं तो श्रीलाल ने बाहर आकर देखा कि अपने पूरे फौज-फाटे के साथ शबनम मौसी की हमजात सोफ़िया तालियां फटकारती हुई बाहर मौजूद थी. बल्लू को लगभग धकेलती हुए सोफ़िया बोली, ''चल बल्लू उधर बैठ तो.''

सोफ़िया तालियां पीटते हुए कह रही थी, ''हाय... हाय... हाय हमें तो शगुन चाहिए. लड़के का ब्याह है... कोई मजाक नहीं.'' फिर वही तालियों की फट्-फट् गुंजाती बोली, ''लड़के के ब्याह के नेग ल्याओ, ... दो हजार एक का रेट चल रहा है... छोटू की भाभी!.... नया साड़ी ब्लाउज चाहिए और देखो मिठाई-विठाई, अनाज़ वगैरह भी लेती आना.''

।। डॉ. पद्मा शर्मा ।।

तालियों की चट-चटाहट सुनकर दूसरे लोग भी बाहर निकल आये. सबके चेहरे पर मुस्कान की रेखा पसरी हुई थी. उन्हें देखते ही सोफ़िया पहले से भी अधिक तेज़ आवाज़ में तालियां पीटती हुई बोली, ''हाय.... हाय... हाय... अच्छे खाते-पीते हो.... तुम लोग! इतना नहीं दोगे तो ग़रीब बेचारा क्या देगा, ... हाय... हाय... हाय... हमारा पेट कैसे पलेगा.''

कहते हुए उसने पेट पर पड़े साड़ी के पल्ले को झटके से हटाकर इस अदा से अपना पेट दिखाया कि उसके गोरे गुदाज पेट के साथ-साथ बदन का ऊपरी हिस्सा भी दिख गया. ऊपरी हिस्सा यानि साइज में छोटा और ख़ूब कसा हुआ ब्लाउज... जिसकी दोनों कटोरियां भीतर के दबाव के कारण फट पड़ने को आतुर हो रही थीं.

बल्लू को जरा भी हैरत नहीं हुई. वहां खड़े पुरुष ज़रूर एक-दूसरे को अश्लील इशारा करके हंस दिये.

उन लोगों के भाव ताड़कर श्रीलाल ने छोटे बच्चों को अंदर जाने का आदेश सुना दिया. बल्लू ने देखा कि श्रीलाल सोफ़िया से कुछ कहना चाह रहे थे लेकिन उसने उन्हें बोलने का जरा भी मौका नहीं दिया. वे बार-बार कुछ कहते लेकिन उनकी आवाज़ नक्कारखाने में तूती की आवाज़ की तरह दबकर रह जाती.

उन लोगों में सोफ़िया ही मुखिया थी. उसने अपने साथियों को आदेशित किया, ''अरे री! गाओ रे गाओ... ऐ बल्लू बजा तो ढोलक. ऐ संगीता..., ऐ रबीना... लगा तो ठुमका. अरी ओ रंभा.... ओ सुल्ताना... निकाल तो घुंघरू.''

देखते ही देखते उनका पिटारा खुला. रबीना और संगीता ने पांवों में बड़े-बड़े घुंघरू बांध लिये. रंभा ने मंजीरे संभाल लिये, सुल्ताना ने ढपली पकड़ ली. बल्लू ने लपक कर ढोलक घुटनों के नीचे दबायी और अपने हाथ ढोलक पर साध लिये और सोफ़िया की ओर देखने लगा. सोफ़िया ने गाना शुरू कर दिया, ''कांटा लगा ऽऽ... ''

एक ख़ास तरीके से हाथ नचाते हुए, संगीता मटकती हुई घूम रही थी और श्रीलाल के मेहमान ध्यान से उन लोगों का नाचना देख रहे थे. रबीना दायें तरफ झुककर अपना पल्लू नीचे गिराती हुई उत्तेजित अदाएं दिखा रही थी. सोफ़िया पैरों को आगे-पीछे कर क़दम ताल करके नाच रही थी. वह बायें हाथ से अनोखे अंदाज में साड़ी की प्लेटें बीच में से ऊपर को उठाये, दूसरे हाथ को नचा-नचाकर घूम रही थी. वे कभी-कभी लंबा घूंघट डाल लेतीं, तो कभी साड़ी का पल्लू नीचे गिरा कर अपने तने हुए उरोजों को झटके के साथ मटका देती थीं.

बल्लू सोच रहा था, इस बस्ती में .... होली हो या दिवाली सब त्यौहारों पर सोफ़िया सब घरों से शगुन लेती है, शादी-ब्याह हो या बच्चे का जन्म, सबके लिए अलग-अलग रेट चलते हैं. .... बाज़ार में दुकानवालों से भी ख़ूब रुपये लेती है और इसके लिए उन्हें रिझाती है, पटाती है. उनकी फरमाइश पर नये-नये गीतों पर एक अलग तरह से क़दम ताल के ठुमके लगाती है. हालांकि इन दिनों टी.वी. देख-देखकर हीरोइनों जैसा नाचने की अदाएं सीख रही हैं. बाहर के किन्नरों में सब ऐसे नहीं हैं, वे हमेशा अड़कर और लड़कर पैसा लेते हैं,

**मुरार, ग्वालियर (म. प्र.) ; एम. ए., पीएच. डी.**

**कृतित्व** : देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, लेख, कविताएं प्रकाशित.
कहानी संग्रह-रेत का घरौंदा कहानी संग्रह ''उसकी आजादी'' शीघ्र प्रकाश्य.
अभी हाल ही में वसुधा, साक्षात्कार एवं संवेद वाराणसी, समावर्त्तन, पत्रिका में कहानियां प्रकाशित. कथाक्रम के 'साठ पार का जीवन विशेषांक में कहानी प्रकाशित, जीवन की नयी सुबह (कहानी संग्रह) फुटकर कई कहानियां,

**प्रसारण** : आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से कहानी, कविता, वार्ता एवं परिचर्चा प्रसारित. फ़ीचर लेखन.

**संपादन** : अध्येता पत्रिका, विरासत पत्रिका.

**पुरस्कार** : हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा 'प्रज्ञा भारती' की उपाधि;
राष्ट्रधर्म (पत्रिका), लखनऊ द्वारा 'राधेश्याम चितलांगिया कहानी पुरस्कार';
दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली द्वारा 'सावित्री बाई फुले पुरस्कार.';
भद्रावती महाराष्ट्र द्वारा प्रतिभा सम्मान पुरस्कार.

**संप्रति** : शा. स्नातकात्तर महाविद्यालय शिवपुरी (म. प्र.) में सहायक प्राध्याक (हिंदी विभाग).


बल्कि अब तो रेल में भी ये लोग सवारियों से पैसों के लिए जिरह करने लगी हैं.

बल्लू वैसे तो इन लोगों की अनेक हरकतों का आदी हो गया है, लेकिन फिर भी इन लोगों का अपने नकली उरोजों वाले सपाट सीने से बार-बार पल्ला हटा लेना और साड़ी घुटनों के ऊपर तक खींच कर असफल मादकता पैदा करने की हरकत उसके मन में कभी-कभी जुगुप्सा भर देती है. जुगुप्सा तो और भी तमाम

आदतों से होने लगती है, मसलन इनमें से कोई-कोई बीड़ी सिगरेट पीतीं, ... कोई तंबाकू खाती थीं. कोई शराब की चुस्कियों की शौकीन हैं तो कोई अफीम की पीनक लगाये पड़ी रहती हैं. ... ज़्यादातर की आदत है कि अपने डेरे के भीतर घुसते ही साड़ी निकाल कर फेंक देती हैं, सिर्फ़ पेटीकोट-ब्लाउज में ही घर में रहती हैं. ... एक दूसरे से ऐसी अश्लील और उत्तेजक बातें करती हैं कि बातों ही बातों में शर्म लिहाज खो देना और एक दूसरे से लिपट-चिपट जाना रोज़ के नजारे हैं.

इनमें से कुछ ज़रूर बहुत संयमित रहती हैं, नये-नये डिजायन के जनाना कपड़े व आर्टिफिशियल जेवर पहनना उनकी पसंद में शुमार था. उनकी आईब्रो तराशी हुई रहतीं. होठों पर चकाचक लिपिस्टिक लगी होती थी. सीने पर रुई के पैडवाली ब्रा से उत्तेजक उभार दे देती थीं. चेहरे नीट एंड क्लीन होते थे और ख़ुद को ब्यूटी क्वीन समझती थीं. किन्नरों में भी दो तरह के लोग हैं. एक वे जो पैदा होते वक़्त मर्द थे और अब स्त्री के रूप में रहना उनकी मानसिक और शारीरिक मजबूरी या शौक हो गया था, दूसरी वे जो पैदाइश के समय से स्त्री हैं लेकिन जिनमें स्त्रैण अहसासों का अभाव रहा हमेशा. इनमें जो स्त्री होती थीं, उनके चेहरे और पेट पर बाल नहीं होते थे वे शायद औरत के रूप में जन्म लेकर भी अधूरी रही होती थीं.

बल्लू आज तक नहीं समझ पाया कि इनमें से कौन किस कौम की है? उनके नाम भी अजीब होते हैं... सलमा बी, बड़ी बी, जगीरा, सुनयना आदि. ये ज़रूरी नहीं था कि जिस कौम से वे आयी हैं, वैसा ही नाम रखा जाये. इस खेमे में आकर नये नाम पा लेने से इनका भूतकाल समाप्त हो जाता है. सांप्रदायिक सद्भाव की अनोखी मिसाल थी इनकी टोली में. हिंदू के मुस्लिम नाम और मुस्लिमों के हिंदू नाम रखे जाते थे. अधिकांश ने तो हीरोइनों के नाम पर अपने नाम रख लिये थे, जैसे माधुरी, रानी, डिंपल, रवीना, रंभा वगैरह.

इन सबके साथ में ढोलक बजानेवाला प्रायः पुरुष ही रहता था. वह भी ढोलक का उम्दा खिलाड़ी होता था, उसकी बजायी ढोलक की गमक ऐसी होती कि सुननेवाले किसी भी आदमी का मन नाचने को हो जाये.

बल्लू तेरह-चौदह साल का बालक है. उसकी मूछों की रेखें निकलना शुरू हो गयी थीं. बल्लू को याद आया लोग कहते हैं कि चौदह साल पहले एक पगली कहीं बाहर से घूमती फिरती इस मोहल्ले में आ गयी थी, इसी गली के घरों से मिलते रोटी के टुकड़ों पर पलने लगी थी. वह युवती अचानक गर्भवती हुई और कुछ महीनों बाद उस पगली के एक बच्चा पैदा हुआ था. सब चिंतित थे कि पगली उस बच्चे को कैसे पालेगी? लेकिन मोहल्ले के किसी परिवार ने इतनी हिम्मत नहीं दिखाई कि उस बच्चे को पाल सकें. तब किन्नरों के गुरू पांडुरंगा ज़िंदा थे. सबको चौंकाते हुए अचानक उनकी टोली ने ही बल्लू को पालने का जिम्मा ले लिया था. उन दिनों श्रीलाल के मन में इन लोगों के प्रति अपार श्रद्धा उमड़ गयी थी. बल्लू उसी पगली का वही लड़का है. अब तो ख़ूब बड़ा हो गया है और बड़ी मुस्तैदी से ढोलक बजाना भी सीख गया है.

रात में बल्लू दालान में सोता है. पहले वह सब लोगों के साथ भीतर हॉल में सोता था तब सभी लोग उसे अपने पास लिटाने को आतुर रहती थीं. शुरू में तो वह समझता था कि सब उसे बच्चे की तरह बेहद प्यार करती हैं. लेकिन धीरे-धीरे उसे महसूस होने लगा कि रात में नींद का बहाना कर कोई उस पर अपना पैर रखकर सीने से सटाकर सो जाती, कभी रात में बल्लू के शरीर पर किसी का हाथ रेंगने लगता. उनके हाथों का स्पर्श उसे अच्छा लगता और वह भी बेहद उत्तेजित हो अंततः स्खलित हो जाता. एक अलग होती तो दूसरी पास सरक आती. एक रात जब एक के बाद एक चार ने उसे परेशान किया तो वह चीख उठा. तब से सोफ़िया ने उसे बाहर दालान में सुलाना शुरू कर दिया. उसने सबको हिदायत भी दे दी कि वह पांडुरंगा की अमानत है इसलिए उसे अपनी टीम से अलग करना नहीं चाहती, अन्यथा अब बल्लू की उमर अलग रहकर खाने कमाने की हो चुकी है. उसने ग़ुस्से में कहा कि बल्लू के साथ किसी ने भी बदसलूकी की तो उससे बुरा कोई नहीं होगा.

वह दालान में सोता लेकिन उसे रात्रि में अब भी कमरे से सिसकारियां और लंबी सांसों की आवाज़ें सुनाई देती रहतीं. उसका मन मादक हो उठता, इच्छा होती कि वह किबाड़ की दरार में से झांके लेकिन उस रात की घटना याद आते ही वह पस्त हो जाता.

... अब सोफ़िया दूसरा गाना गाने लगी थी.

सासुल पनिया कैसे जाऊं रसीले दोऊ नैना....

... गाने की एक लाइन सोफ़िया गा रही थी फिर उसी लाइन को सुल्ताना और रंभा दोहरा देती थीं. इन दोनों में से जो भी लाइन को ग़लत दोहरा देती, उसी की तरफ सोफ़िया आंखें तरेर देती थी. बल्लू ने रबीना पर एक नज़र डाली, वह नाच कम रही थी... अपने कंधे हिलाकर उरोजों को ज़्यादा मटका रही थी. उसने अपना ध्यान वहां से हटा लिया.

वह सोच रहा था कि ये मोहल्ले वाले भी अजीब होते हैं. पड़ोस में किसी के भी यहां बच्चा पैदा हो तुरंत इन लोगों को ख़बर देते हैं. वे तमाशा देखना चाहते हैं कि हमारे घर से जितना लिया था, पड़ोस वाली श्रीवास्तवनी उतना देती है या नहीं? मोहल्ले का कोई भी शुभचिंतक एसएमएस की तरह तुरंत सोफ़िया की टीम को सूचित कर देता. ये मोहल्लेवाले आपस में कितनी ईर्ष्या करते हैं!

सोफ़िया जब बच्चे के जन्म पर नेग मांगने आती है तो अलग ढंग से नाचती है. इनमें से एक जन नये बच्चे को गोद में लेकर नाचती है. दान में मिले अनाज के कुछ दाने बच्चे की मां की गोद में डालकर कई आशीष दे डालती हैं..." दूधो नहाओ, पूतो फलो..., बच्चा जुग-जुग जिये..., बच्चा कलेक्टर बने..., गाड़ियों में घूमे..., ख़ूब नाम कमाये."

□

'जरा एक मिनट मेरी बात तो सुन लो सोफ़िया," अबकी बार श्रीलाल की आवाज़ सुनते ही अचानक सोफ़िया ने गाना बंद कर दिया. बल्लू के हाथ रुक गये. रवीना और संगीता के भी पैर थम गये. वे कह रहे थे, 'देखो सोफ़िया बहन दो हज़ार एक का नेग तो ज़्यादा है. हमारी हैसियत के हिसाब से लो.'

सोफ़िया ने धमकी भरे स्वर में कहा, 'देखो श्रीलालजी जो सबसे लेते हैं वह आपसे लेंगे. यदि नेग नहीं दोगे तो हम अभी नंग-नाच दिखाते हैं.'

बल्लू को मालूम था कि मनमाफिक या बंधे रेट के मुताबिक शगुन न मिलने पर सोफ़िया नंगे होने की धमकी देती है. इन लोगों के नंगे हो जाने में पता नहीं कौन-सा शाप समाया हुआ था कि धमकी देने से ही सब लोग डर जाते हैं. बल्लू ने तो कई बार नंग-नाच होते देखा है, क्योंकि अनेक लालची और जिद्दी लोग किन्नरों को कुत्ते की तरह दुत्कार के भगाना चाहते हैं, तब वे नाराज़ होकर निस्संकोच, एक-एक करके कपड़े उतारना शुरू करते हैं और हर कपड़े के साथ नाच का एक चक्कर और ताली की फटकार के साथ ऐसी मर्दाना-अश्लील गाली कि सुननेवाले शर्मिंदा हो उठें.

श्रीलाल ने सभी बच्चों को घर के अंदर भेज दिया था. वे कहने लगे, "देखो सोफ़िया बहन! तुम्हें तो सब मालूम है, पांडुरंगा मामू जब तक ज़िंदा थे कभी यहां शगुन लेने नहीं आये, .... वे हमारी मां को बहन मानते थे न...! उनके बाद सोफ़िया बहन तुम वारिस बनीं. इसलिए मामू का धर्म तुम्हें निभाना चाहिए...."

सोफ़िया ग़ुस्से में बोल उठी, "हाय-हाय-हाय अब वो ज़माना गया. अब ऐसा नहीं चलेगा." उसने तालियों की आवाज़ फटकारी, "एक तो आप लोगों के समाज में वैसे भी लोग अब ज़्यादा संतानें पैदा नहीं करते. बस हर घर में एक-एक, दो-दो बच्चे होते हैं सो हमारा तो बधाई और चरुआ वाला नेग चला गया न! फिर सारे के सारे शादी-ब्याह बड़े होटलों में होने लगे हैं, जिसके दरवाज़े पर खड़े तगड़े सिपाही धमकाते रहते हैं और हम जैसों को नेग मांगने तक के लिए घुसने नहीं देते. ... और फिर घोड़ा घास से दोस्ती करेगा तो खायेगा क्या?"

श्रीलाल ने तर्क दिया, "वो रिश्ता भुला दोगी क्या जो पांडुरंगा मामा के ज़माने से चला आ रहा है... "

रिश्ते की बात सुनकर सोफ़िया को तैश आ गया. वह बोली, "तुमने रिश्ता माना होता तो हम भी निभाते. रिश्ता तुमने तोड़ दिया है... हाय-हाय-हाय... शादी के न्यौता देने के समय हम कोई नहीं थीं. हमें भी कार्ड देते तो मानते." उसकी तालियों की आवाज़ फट-फट कर गूंजी. वह बोली, "अभी तक हर मौके पर बुलावा आता रहा सो हम भी रिश्ता निभा रही थीं. अब तुमने रिश्ता तोड़ा है तो तुम्हें भुगतान तो करना पड़ेगा."

श्रीलाल ने बातों में ख़ुद को घिरता देखा तो फिलहाल सोफ़िया को टालने के उद्देश्य से तर्क दिया, "परसों आ जाना बहू के लिबउआ आयेंगे तुम्हें लड़कीवालों से नेग दिला देंगे."

सोफ़िया खीझती हुई बोली, "हमारे भी कुछ उसूल हैं लालजी. लड़की की शादी में लड़की वालों से शगुन

नहीं लेते. .... और जिसके यहां गमी हो जाती है उसके यहां से साल भर तक नेग-दस्तूर नहीं लेते.... पहली लड़की पैदा होने पर नेग लेते हैं.... दूसरी लड़की होने पर जिद नहीं करते. ... ग़रीबों को कम पैसों में बख्स देते हैं.''

बल्लू उन लोगों की जिरह होते देख रहा था. रुपये के मामले में सोफ़िया को ग़ुस्से में देखकर वह निर्णय नहीं ले पा रहा था कि ये इसका असली रूप है या वो असली रूप था जो कारगिल युद्ध के समय फौजियों के वास्ते दान देने के लिए कलेक्टर को सबसे पहले पांच हजार का चेक देते वक़्त दिखा था. ... और उस दिन सड़क पर ख़ून से लथपथ व्यक्ति को जब कोई नहीं उठा रहा था तो सोफ़िया ही थी जो उसे अस्पताल पहुंचा आयी थी. डॉक्टर से उसने कहा था कि ख़ून की ज़रूरत हो तो हमारा ले लो, बस यह बच जाये बेचारा. हां इतनी जांच कर लेना कि कहीं उसे कोई बीमारी न हो जाये. हम जैसा श्राप न लग जाये बेचारे को.''

श्रीलाल ने कई हील-हवाले दिये, मान-मनोव्वल किया और माफ़ी मांगी. तब कहीं जाकर सोफ़िया का ग़ुस्सा ठंडा हुआ. इस बार वह शादी का नेग लेने आयी थी, नेग लेना तो उसके नियम में था. हां इतना ज़रूर हुआ कि एक साड़ी और पांच सौ एक रुपये में सोफ़िया सहमत हो गयी.

अंदर से नयी बहू को बुलाया गया. सोफ़िया ने नयी बहू की बलायें लेते हुए कई आशीष दिये. पांडुरंगा के नाम से बहू के हाथ में इक्यावन रुपये मुंह दिखाई के भी दिये. फिर दुल्हन के पास खड़ी एक जवान लड़की की ओर इशारा करके श्रीलाल से बोली, ''हमारी बिटिया भी सयानी हो गयी है.... इसके हाथ कब पीले कर रहे हो? अबकी बार बुलावा देना मत भूलना. क्या नाम है इसका?''

श्रीलाल ने संक्षिप्त उत्तर दिया, ''प्रतिभा.''

''अब तो कॉलेज में पढ़ रही होगी?''

''हां.''

बल्लू ने देखा नयी बहू से सटकर खड़ी प्रतिभा शर्म की गठरी बनी जा रही थी.

फिर ब्याह की बची मिठाई खाकर पानी पिया और वे लोग आपस में मस्ती करती लौट पड़ीं.

दो महीने बाद की बात है....

अगस्त का महीना शुरू हो गया था. कई दिनों से पानी बरस रहा था.

दोपहर का समय था. ... बल्लू का नियम था कि वह बारह बजे बाहर निकलता और पास की गली में नुक्कड़ पर रखी गुमटी में बने होटल पर चाय और टोस्ट खाता. उस दिन कुछ ज़्यादा ही बारिश हो रही थी. फिर भी उसे चाय की तलब ने बाहर निकलने पर मजबूर कर दिया और वह चाय पीने चल दिया. आज होटल बंद था. निराश होकर वह लौट ही रहा था कि उसने देखा श्रीलाल की बेटी प्रतिभा कॉलेज से आ रही थी. यूं तो वह छाता लगाये थी लेकिन फिर भी पूरी तरह भींग गयी थी. उसके कपड़े बदन से चिपक गये थे और वह कांप रही थी. वह जल्दी घर पहुंचना चाहती थी, शायद इसीलिए शॉर्टकट के चक्कर में, वह गली में घुस गयी. बल्लू ने देखा कि उसी समय उसके पीछे-पीछे प्रतिभा के मोहल्ले का लड़का छिंगा भी गली में चला गया. क्षणभर को बल्लू को संदेह तो हुआ लेकिन फिर प्रतिभा से किसी तरह का लगाव न होने के कारण वह निर्पेक्ष सा घर लौट आया.

काफ़ी देर बाद की बात है. शाम हो चली थी. टीम की सदस्य घर लौटने लगी थीं. यकायक बाज़ार से लौटी रबीना बदहवास-सी सोफ़िया के पास आयी और बोली, ''सोफ़िया बी तुमने कुछ सुना?'' उसका सीना धौंकनी के समान चल रहा था.

सोफ़िया ने कहा, ''जरा दम ले ले फिर बताना.''

रबीना ने दम लिया फिर बोल पड़ी, ''मैं श्रीलाल के मोहल्ले से आ रही हूं. सुनकर आयी हूं कि आज दिन दहाड़े किसी ने उसकी लड़की की इज़्ज़त लूट ली.''

बल्लू पास ही खड़ा था, वह चौंक कर बोला, ''कब?''

''.... आज दिन में. वो होटल वाली गली में.''

बल्लू सकते में आ गया. कांपती सी आवाज़ में बोला, ''दिन में तो मैंने उसे देखा था गली में जाते. ... हां उसके पीछे-पीछे एक लड़का भी गया था उसी के मोहल्ले का दादा छिंगा.''

सोफ़िया ने उसे पकड़कर झिंझोड़ दिया और बोली, ''बता और क्या देखा था तूने?''

वह घबराकर बोला, ''कुछ नहीं मैं तो वापस आ गया था.''

सोफ़िया ने यकायक ग़ुस्से में भरकर बल्लू को दो

चांटे जड़ दिये और चीख़ कर बोली, ''अरे हिजड़े, तूने श्रीलाल के घर से हमारे ऐसे निजी संबंध होने के बाद भी प्रतिभा पर नज़र नहीं रखी. तू सिर्फ़ पीछे-पीछे गली में चला जाता तो....''

फिर सोफ़िया रबीना की ओर मुखातिव होकर बोली- ''श्रीलाल ने पुलिस में रिपोर्ट लिखवा दी होगी, मरेगा साला छिंगा अपने आप!''

रवीना बोली, ''वही तो! उन्होंने रिपोर्ट नहीं लिखवायी है..... ''

सुनते ही सोफ़िया ने बल्लू का हाथ पकड़ा और दनदनाती हुई श्रीलाल के यहां पहुंच गयी.

श्रीलाल घर पर नीचा सिर किये बैठे थे. उनका चेहरा बुझा हुआ था. सोफ़िया ने जाते ही प्रश्न दागा, ''आपने रिपोर्ट क्यों नहीं लिखवायी?''

श्रीलाल पहले तो चौंके कि इन्हें कहां से मालूम पड़ गया. फिर बोले, ''देखो जो होना था सो हो गया. अभी तो बात घर की घर में है. पुलिस में जाने से बात पूरे शहर में फैल जायेगी. फिर उससे शादी कौन करेगा...?''

सोफ़िया ने कहा, ''बात घर की घर में नहीं रह गयी पूरे मोहल्ले में ख़बर हो गयी है. सात ताले के भीतर भी लड़की की इज़्ज़त की चटकन और थाली की खनक सबको मालूम पड़ जाती है.''

बल्लू ने देखा, प्रतिभा चुपचाप बैठी है. सोफ़िया ने प्रतिभा से पूछा, ''क्यों छिंगा ही था ना?''

उसने हां में सिर हिलाया और उसकी आंखों से आंसू बह निकले.

सोफ़िया ने श्रीलाल पर जोर डालते हुए कहा, ''देखो लालजी, चलो तुम रिपोर्ट लिखाने चलो. ज़रूरत पड़ी तो बल्लू देगा गवाही.''

श्रीलाल ने कहा, ''देखो सोफ़िया बहन होना जाना कुछ नही है. वो गुंडा बदमाश है.''

सोफ़िया उलाहना देनेवाले स्वर में बोली, ''तुम लोग औरतों को आगे बढ़ाने की बातें तो बड़ी-बड़ी करते हो. लेकिन जब कुछ करने की बारी आती है तो पीछे हट जाते हो. सच्ची बात यह है कि आज भी तुम्हारी मानसिकता नहीं बदली है.''

वह देर तक मनाती रही लेकिन श्रीलाल टस से मस नहीं हुए. सोफ़िया पैर पटकती घर वापस आ गयी.

घटना का पांचवा दिन था आज. सांझ को होटलवाली उसी गली में छिंगा बेहोश पड़ा मिला था. पुलिस आयी..., तफ्तीश हुई और उसे अस्पताल में भर्ती करा दिया गया है. जल्द ही यह ख़बर सब जगह फैल गयी कि किसी ने उस लड़के का गुप्तांग काट दिया है. उसकी हालत ठीक नहीं.

क़स्बे के साथ बल्लू ख़ुद स्तब्ध है.

अचानक सोफ़िया की टोली अस्पताल पहुंची. डॉक्टर से बात करके पता लगा कि पंद्रह दिन में आराम मिल पायेगा. सोफ़िया अपने डेरे पर लौट आयी.

कई दिन बीत गये. सोफ़िया बीच-बीच में छिंगा को देख आती थी. जिस दिन वह स्वस्थ हुआ, सोफ़िया पूरे फौज-फाटे के साथ अस्पताल पहुंच गयी. दरअसल वे उसे अपनी बिरादरी में शामिल करना चाहती थीं. अस्पताल में एक सिपाही तैनात था, उसने तुरंत अपने दरोगा को बुला लिया. पुलिस दरोगा ने सोफ़िया से कहा, ''उसकी मर्जी के बिना तुम उसे अपने टोली में सम्मिलित नहीं कर सकतीं. फिर वैसे भी अभी हमारी तफ्तीश चल रही है इसलिए वह अभी अस्पताल में ही रहेगा.''

यह सुनकर सोफ़िया मायूस हो वापस आ गयी.

क्वार का महीना शुरू हो गया था. जगह-जगह दुर्गा प्रतिमा बिठायी जा रही थीं. सोफ़िया की सभी साथिनें अलग-अलग मुहल्ले में उगाहनी के लिए निकल गयीं. सोफ़िया बल्लू को साथ लेकर श्रीलाल के मोहल्ले में चल दी. श्रीलाल घर पर ही मिल गये. उन्होंने चाय पानी के बाद सोफ़िया से भेदती निगाहों में पूछा, ''सब लोगों को शक है कि तुम लोग अपनी बिरादरी में संख्या बढ़ाने के लिए लोगों के अंग-भंग कर रही हो.''

सोफ़िया बड़े ऊंचे स्तर में बोली, ''नहीं लालजी हमारी संख्या तो ईश्वर बढ़ाता है. खुदा न करे वह और अधिक संख्या बढ़ाये. हमें कितना कष्ट है इस जोनि में होने का, यह तो हम ही जानती हैं. हां हमें उस चीज़ पर बड़ा ग़ुस्सा ज़रूर है, जिसके होने पर ये नाशपिटे दम भरते हैं और हमारी बहू बेटियों की इज़्ज़त से खेलते हैं.''

सोफ़िया के चेहरे पर कई भाव आ जा रहे थे. कुछ देर शांत रहकर वह फुसफुसाते स्वर में बोली, ''हां यह सच है कि छिंगा के साथ यह काम हमने किया है, ... लेकिन अपनी संख्या बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि तुम जैसे भीरू लोगों में चेतना जगाने के लिए. जिस दिन बलात्कारियों को ये सजा मिलने लग जायेगी, उस दिन से कोई भी गुंडा औरतों की इज़्ज़त लूटने की

## ग़ज़लें

✍ सच्चिदानंद 'इंसान'

(१)

वक़्त की बेरुखी की बात करो,
दोस्तो ज़िंदगी की बात करो।
हो गयी बात तीरगी की बहुत,
रहबरो रोशनी की बात करो।
दुश्मनी हो गयी बहुत तेरी,
आओ अब दोस्ती की बात करो।
ग़म के साये में ज़िंदगी गुज़री,
यार अब तो ख़ुशी की बात करो।
अब भी आखों में अश्क बाकी है,
हम नवा आशिक़ी की बात करो।
मौत 'इंसान' एक हकीकत है,
तुम मगर ज़िंदगी की बात करो।

(२)

शहर का हर आइना भी अजनबी सा हो गया,
भीड़ तो बढ़ती गयी 'इंसान' तन्हा हो गया।
चिल-चिलाती धूप में हम रेत पर चलते रहे,
मुद्दतों से जाने क्यों बेगाना साया हो गया।
याद बीते लम्हों की करती रही अठखेलियां,
फसल-ए-गुल क्या आयी है हर ज़ख़्म ताज़ा हो गया।
रफ़्ता-रफ़्ता आशियां जलने का ग़म मिट जायेगा,
दाग़ लेकिन दिल में अपने उम्र भर का हो गया।
लौट कर आये ख़ेजां या रूठ कर जाये बहार,
अब तो तन्हाई का इंसां आशना सा हो गय।

जी.पी.वर्मा लेन, मुंदीचक, सहारा मिशन स्कूल, भागलपुर (बिहार)

हिम्मत नहीं कर सकेगा.''

श्रीलाल विस्फारित नेत्रों से सोफ़िया को ताके जा रहे थे.

सोफ़िया श्रीलाल को शांत देखकर विषाक्त स्वर में बोली- ''अलबत्ता पहले तो मां-बाप इज़्ज़त के डर से रिपोर्ट लिखाते नहीं हैं. यदि रिपोर्ट लिखा भी दें.... तो अदालत में केस साबित नहीं हो पाता. मुल्जिम के रुपयों की भरमार से सबूत के बिना केस रफ़ा-दफ़ा हो जाता है. ... वैसे आख़िर में जुर्म साबित भी हो जाये तो कितने साल की सजा होगी? ... पांच साल की, ... सात साल की, बस... !''

ज़मीन पर हाथ मारते हुए वह बोली, ''हरामियों को ऐसी सज़ा मिले जैसी हमने दी है. आइंदा कोई बहू-बेटियों की तरफ आंख उठाने की हिम्मत न करे.''

सहसा बल्लू को याद आया कि प्रतिभा से बलात्कार होने के पांच दिन बाद की बात है, उस रात तेज़ बारिश में सोफ़िया पांच-छह लोगों को लेकर कहीं जाती हुई दिखी तो उसने भी चलने की जिद की थी, उसे घर में रहने का कह कर वे लोग भींगते हुए चल पड़ी थीं. बल्लू धीरे से उनके पीछे बाहर निकला. बाहर कर्फ़्यू की तरह सन्नाटा फैला था. होटल बंद हो गया था. बल्लू होटल की बेंच पर बैठ गया. सहसा उसने देखा कि सुल्ताना और रंभा पासवाली उसी गली में चली गयी थीं. वह भींगता, कांपते हुए बैठा रहा.

अचानक गली से तेज चीख़ आयी. कुछ देर बाद बल्लू को डर लगा तो वह उठा और डेरे पर वापस आ गया. जब तक उसने कपड़े बदले वे सभी वापस आ गयी थीं. उसने सोफ़िया से कई बार पूछा था कि, ''क्या हुआ. वो चीख़ कैसी थी?''

लेकिन उसे कुछ नहीं बताया गया. आज उसे समझ आया कि क्या माजरा था.

सोफ़िया की बात सुनकर बल्लू के मन में कभी-कभी उन लोगों के प्रति आ जाने वाले क्रोध, नफ़रत, उपेक्षा के भाव समाप्त हो गये. उसे लग रहा था कि संवेदना और विरोध करने की हिम्मत तो इन लोगों में है जो अधूरे कहे जाते हैं और दूसरों पर आश्रित रहते हैं. संवेदना और इज़्ज़त श्रीलाल जैसों में कहां है? इज़्ज़त और संवेदना से तो ये लोग जीते हैं! समाज में रहनेवाले गृहस्थों की इज़्ज़त तो मौके-बैमौके उधड़ती रहती है, उतरती रहती है. इज़्ज़त के रहनुमा कहे जानेवाले दरअसल गुंडों से डरते हैं और अंजाने में रहबर बन जाते हैं. जिसका अंजाम भुगतती हैं उनके घर की बहन-बेटियां!

बल्लू के मन में सोफ़िया की पूरी बिरादरी पर श्रद्धा उमड़ आयी थी.

एफ-१, प्रोफेसर कॉलोनी,
शिवपुरी (म.प्र.) ४७३५५१.
मो. ९४०६९८०२०७/९९२६६२६६०७

कहानी

# एक डॉक्टर की मौत

चीड़ के वृक्षों से आच्छादित हरी-भरी पहाड़ी पर दार्जिलिंग की सड़कें, क्रिसमस के किसी नायाब उपहार पर लिपटे रेशमी फीतों जैसी दिखती हैं. इन्हीं सर्पिल सड़कों के मोह-पाश से निकलकर हमारी मारुति वैन उत्तर बिहार की सीधी समतल सड़कों पर सरपट भाग रही थी.

बसंत ऋतु की बिदाई हो चुकी थी, पर पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण हवा में ठंडी खुनक बरकरार थी. मंद-मंद बहती बयार में आम की मंजरियों की मादक महक तैर रही थी. पीछे गहरा नीला पहाड़ और ऊपर स्वच्छ, हल्का नीला आसमान था, जिसमें रुई के ढेर समान बादल, प्रतिपल कैलिडोस्कोप की भांति रूप बदल-बदल कर, हम वयस्कों के भीतर बसे बालमन का मनोरंजन कर रहे थे. बहुरूपिया बादल की कुछ छवियों को, गाड़ी रोक कर कैमरे में क़ैद करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सका.

हमारी मंजिल दूर थी. समय पर्याप्त था एवं कार्य पूरा होने की प्रसन्नता साथ थी, अतएव चालक को प्रारंभ में ही गाड़ी धीमी गति से चलाने का निर्देश दे दिया गया था.

मेरी सफ़ेद मारुति वैन में चालक एवं मेरे अलावा, मेरे बहन-बहनोई थे, जिनके पुत्र का एक पब्लिक स्कूल में दाख़िला करा कर हम लौट रहे थे. सभी के चेहरों पर मेरे भांजे की सफलता की ख़ुशी एवं संतुष्टि भरी मुस्कान तैर रही थी. भांजे ने लिखित परीक्षा के साथ अंतर्वीक्षा में भी शिक्षकों को बहुत प्रभावित किया था. भांजे के ऊपरी कर्तक दांत का निचला अंश किसी झगड़े के दौरान टूट गया था. विद्यालय के प्राचार्य के द्वारा इस बाबत पूछे जाने पर होशियार भांजे ने उत्तर दिया था, 'सर, फुटबाल खेलते समय टूट गया.'

यूं ही हल्की-फुल्की बातें करते, हंसते, आह्लादित होते हुए, हम राजधानी की तरफ लौट रहे थे.

हमारी मारुति वैन के आगे, एक लाल-बत्ती से सज्जित काली रंग की स्कॉर्पियो गाड़ी तेज़ी से भाग रही थी. बिहार के हिसाब से सड़कें ठीक-ठाक थीं, पर जहां टूटी-फूटी थीं, बुरी हाल में थीं. आगे-आगे जा रही स्कॉर्पियो ने हमारे ड्राइवर का काम आसान कर दिया था. वह अगली गाड़ी से एक सुरक्षित दूरी बनाये हुए, उसका पीछा करते जा रहा था. सड़क पर आवागमन कम था, पदयात्री भी नहीं थे और सब कुछ शांत था. अचानक जोर से धड़ाम की आवाज़ हुई और हम सभी चौंक पड़े.

अचकचाते हुए, आवाज़ का कारण जानने के लिए मैंने गर्दन दाहिनी तरफ घुमायी. देखा, सड़क की दूसरी तरफ पगडंडी की मिट्टी में एक मोटर साइकिल गिरी हुई थी और उसका चालक कुछ दूर पड़ा हुआ था.

।। डॉ. प्रदीप अग्रवाल ।।

दुर्घटना स्थल पर अंधा मोड़ था तथा सड़क का बायां हिस्सा ख़राब होने के कारण स्कॉर्पियो गाड़ी दाहिनी लेन में चली गयी थी. दूसरी तरफ से आता मोटर-साइकिल सवार टक्कर से बचने के लिए अपनी बायीं तरफ खिसका था. सर्राटे से भागती स्कॉर्पियो गाड़ी से कटती तेज़ हवा मोटर-साइकिल के लिए जेट-प्लेन के झटके के समान थी और टक्कर नहीं होने के बावजूद मोटर-साइकिल छिटक कर पगडंडी में चली गयी जहां बालू-मिट्टी में धंस कर पलट गयी थी.

आगे जाती स्कॉर्पियो गाड़ी इस हादसे से बेख़बर तेज़ी से बढ़ती गयी एवं आकार में छोटी होती गयी, हमारी दृष्टि पथ पर बिंदु-सम हो कर लुप्त हो गयी. मेरी आंखें वैन के पिछले शीशे से, धरती पर टेढ़े-मेढ़े गिरे मोटर-साइकिल चालक को देख रही थीं. उस घायल राही की बड़ी-बड़ी विस्फारित आंखें, मेरी नज़रों से मिल गयीं. उसकी खुली, बेबस आंखें मानों कुछ कह रही थीं. मेरी गाड़ी आगे बढ़ती जा रही थी, पीछे सुनसान इलाके में हर जगह मुझे दिख रही थीं बड़ी-

बड़ी कातर आंखें, धरती पर, पेड़ की टहनियों पर, ऊपर आकाश में.....

एक चिकित्सक होने एवं स्वयं को एक जिम्मेदार नागरिक मानने के कारण, मैं अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रहता हूं. उस दिन सड़क पर गिरे घायल पथिक की आस-भरी आंखों को देख मुझसे रहा नहीं गया था, मैं उत्तेजना में बोल पड़ा था-

'रोको... गाड़ी रोको.... उसे बहुत चोट लगी है...'

ड्राइवर गाड़ी को संभालते हुए गति धीमी करने लगा था. मेरे नेत्र अभी भी घायल पथिक के नेत्रों से बद्ध थे. तभी ड्राइवर को संबोधित करती मेरे सहयात्री की आवाज़ गूंजी-

'क्यों रोक रहे हो...., उसे उठाया तो तुम्हीं पर 'ब्लेम' (इल्जाम) लगेगा...., जल्दी भागो.....यहां से.'

मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की, कि अगर घायल को तुरंत डॉक्टरी सहायता नहीं मिली तो वह रक्त-स्राव से ही मर जायेगा. उसे अतिशीघ्र अस्पताल ले जाना आवश्यक है.

हम-दोनों का वार्तालाप एवं शिष्ट विवाद, जीवन जीने के सिद्धांतों एवं व्यावहारिकता के बीच द्वंद्व बन गया.

'भैया, आप समझते नहीं हैं...,स्कॉर्पियो तो भाग गयी...., गांव वाले हमीं को पीटेंगे....'

बात तो, उन्होंने व्यावहारिक कही और सत्य भी. आज के युग में जहां भी दुर्घटना होती है, आस-पास रहनेवालों की भीड़ जुट जाती है और लोग बिना ठीक से जाने समझे त्वरित न्याय देने के चक्कर में जो सामने पड़ जाता है उसी की धुनाई कर देते हैं. कोई ट्रक किसी को टक्कर मार कर आगे बढ़ जाये तो पीछे से आती कोई भी गाड़ी जला दी जाती है. मानव-रहित रेलवे क्रॉसिंग पर अगर कोई ट्रैक्टर रेल से टकराता है तो रेल के ही इंजन और डिब्बों में आग लगा दी जाती है.

व्यावहारिकता आगे बढ़ते जाने में थी, और हम व्यावहारिक सिद्ध हुए थे.....

पर घायल यात्री की बड़ी-बड़ी अश्रुपूरित आंखें मेरे नेत्रों से बद्ध होकर मेरे मस्तिष्क, मेरे हृदय और शरीर के कण-कण में छाने लगीं. वे आंखें मेरा पीछा करने लगीं... वे अकेली आंखों की जोड़ी नहीं थीं.... उनके साथ कुछ जोड़ी और कातर आंखें मेरा पीछा करने लगीं....मुझे अपने चिकित्सक जीवन की घटनाएं

प्रदीप अग्रवाल

**५ जुलाई १९५८, गढ़वा (झारखंड);**
**एम. बी. बी. एस., एम. डी. ( मेडिसिन ),**
**एम.डी. ( रेडियोलोजी ), एफ. आई. ए. एम. एस.**

**प्रकाशन** : हिंदी में कुछ कहानियां प्रकाशित.
पुस्तक 'पेट रोग–व्यवहारिक बातें.' राजकमल प्रकाशन (प्रेस में).
जर्नल आई. एम. ए., ब्रिटिश मेडिकल जर्नल आदि में अनेक शोध पत्र प्रकाशित.

**विशेष** : स्वास्थ्य कैंप के माध्यम से गढ़वा में सेवा कार्य.

**संप्रति** : पटना में अपना रेडियोलॉजी निदान केंद्र

याद आने लगीं....

कैंसर, हृदय-रोग और यक्ष्मा आदि के अनगिनत रोगियों को अंतिम सांसें लेते हम देखते थे और तटस्थ भाव से मृत्यु प्रमाणपत्र निर्गत करते थे. मेडिकल कॉलेज में अनेक, उम्र पूरी कर चुके, वृद्ध अंतिम सांसें लेते हुए या अंतिम सांसें ले चुके, लाये जाते थे. मृत्यु की बारंबारता इतनी ज़्यादा होती थी कि हम 'डेथ' शब्द का प्रयोग न करके, कहते थे कि फलां बेड का मरीज 'वर्टिकल' हो गया, अर्थात बिस्तर पर लेटा 'हॉरिजॅन्टल' मरीज, 'वर्टिकल' हो ऊपर चला गया. यह एक वीभत्स मजाक था या संवेदनहीनता की पराकाष्ठा, यह सोचने की न मानसिकता होती थी, न ही फुर्सत. रोगी के मृत होते समय ज़िंदा रखने के प्रयास यथा 'कार्डियक मसाज', कोरामीन की सुई आदि भी रूटीन औपचारिकताएं होती थीं. पर इनमें से एक-दो मौतें हमें अंदर तक हिला देती थीं.

भुलाये नहीं भूलती उस किशोर की पथराई आंखें.... सोलह साल के उस किशोर को बुखार आने के कारण केवल जांच-पड़ताल के लिए, एक दिन के

लिए भर्ती किया गया था. दोपहर में नर्स ने उसकी त्वचा में एक सूई, दवा से रिएक्शन होने की संभावना पता लगाने के लिए दी थी. सूई लगने के साथ ही किशोर की सांसें रुकने लगीं, होठ सूज गये एवं शरीर नीला पड़ने लगा था. रिएक्शन बहुत तेज़ था और सूई शायद ग़लती से नस, रक्त नलिका में चली गयी थी. तत्काल उसे ऑक्सीजन और प्राण रक्षक दवाएं दी गयीं, परंतु पंद्रह मिनट के अंदर छटपटाते हुए उसने प्राण त्याग दिये, सभी को सन्न....मूक करते हुए.

हर व्यक्ति की मृत्यु सुनिश्चित है. ईश्वर यमराज को भांति-भांति के रूपों - बीमारी, दुर्घटना, आग, हिमपात, भूस्खलन, सुनामी....में भेजता है. यमराज का एक रूप जाने-अनजाने चिकित्सक भी बन जाता है. ग़लत कार्य करने वाले चिकित्सकों की चर्चा न करें तो कभी-कभी सही, प्रतिबद्ध चिकित्सक भी मृत्यु का माध्यम बन जाते हैं.

चिकित्सक का कार्य करते हुए हर माह-दो-माह पर किसी व्यक्ति के जीवन के अंतिम पांच-दस मिनटों का गवाह होना आम बात होती है. एक बार पांच साल से 'कैंसर' पीड़ित एक सत्तर वर्षीय वृद्ध रोगी, पेट की अल्ट्रासाउंड जांच के लिए मेरे पास लाया गया था. महानगरों तक के चिकित्सकों ने उसके मर्ज को लाइलाज़ घोषित कर दिया था. वृद्ध धीरे-धीरे चलते हुए जांच कक्ष में आया और 'प्रणाम डाक्टर-साहब' कहते हुए बिस्तर पर लेटा था. पेट की जांच करते हुए, मैंने उन्हें हल्की छटपटाहट करते देखा और मेरे हाथ का यंत्र, जो शरीर के अंदर के दृश्य दिखाता है, हृदय की दिशा में बढ़ गया. मैंने देखा हृदय की सिकुड़न पूरी-पूरी न हो कर अनियमित हो रही थी, लगा हृदय केंचुए की माफिक कुलबुला रहा हो. देखते-देखते दो-तीन मिनट के भीतर, उनका हृदय शांत हो गया... शरीर शिथिल पड़ गया.... और आंखें स्थिर हो गयीं.

याद आने लगी उस अधेड़ औरत की आंखें... दूरभाष पर बताया गया था, लिवर फेल्योर का एक रोगी 'कोमा', गहरी बेहोशी की हालत में है और सही निदान हेतु उसकी अल्ट्रासाउंड जांच करनी है. इमर्जेन्सी की हालत में चार परिजनों ने मिलकर रोगी को जांच के बिस्तर पर लिटा दिया. जांच शुरू करते ही, जैसे ही यंत्र हृदय की दिशा में मुड़ा, मैं अवाक रह गया, उस रोगी की हृदय की धड़कन रुकी हुई थी. शायद रास्ते में ही उसने अंतिम सांसें ले ली थीं. न परामर्शी चिकित्सक स्थिति की गंभीरता को समझ सका था, न रोगी के परिजन मृत्युदूत के पद-चापों को सुन सके थे.

दिखने लगीं वे कातर आंखें, जो पैसों की कमी के कारण साधारण दवा तक नहीं मिल पाने के कारण पथरा गयीं. कभी अर्थाभाव, कभी बंद, हड़ताल और सड़क जाम, तथा कभी चिकित्सक की अनुपस्थिति, अनुभवहीनता एवं कार्य में अरुचि....

हर मौत के बाद हमें दिखती हैं बड़ी-बड़ी सूनी पथरायी आंखें... जिनमें झलकते हैं.... कातरता के भाव..... गुहार के बोल... असहायता की कथा... और कभी-कभी पूर्ण-मुक्तता की शांति.

वे दसियों-बीसियों पथरायी आंखें, जिन्हें मैंने अंत्यत निकटता से देखा... अभी भी मेरा पीछा कर रही हैं, मेरी संवेदनहीनता उजागर कर रही हैं. मैं भागता जा रहा हूं संवेदनाशून्यता की अंधी गुफा की तरफ और कई जोड़ी पथराई आंखें मेरे पीछे दौड़ती आ रही हैं.....

इन्हीं बातों पर सोचते हुए मैं अपने गंतव्य पहुंच गया एवं अंधे मोड़ पर देखी गयी दुर्घटना मेरे मानस पर एक धुंधली छाया बनने लगी.

दो दिनों बाद अख़बार के कोने में छपा दो पंक्तियों का समाचार देखा, मैं सिहर उठा.....

'अंधे-मोड़ पर घायल मोटर-साइकिल सवार की मेडिकल कॉलेज में मौत....'

....उसकी बड़ी-बड़ी आंखें मुझे फिर से झकझोरने लगी. मेरी संवेदना कचोटने लगी. मेरे हृदय में उथल-पुथल मचने लगीं. अगर उन नेत्रों की पुकार मैंने सुन ली होती....काश उन आंखों की भाषा मैंने पढ़ ली होती..... अगर मेरी प्रतिक्रिया सकारात्मक हुई होती....

यह ख़बर, क्या दुर्घटना में घायल एक युवक की मौत की ख़बर थी.....?

.....या अपने प्रोफेशनल इथिक्स एवं ऊंचे आदर्शों के कारण ईश्वर का दूत माने जाने वाले एक डॉक्टर की मौत की...?

मेरा मन गहरे अवसाद से भरता जा रहा था.

**ए-१०२, साकेत प्लाजा, जमाल रोड,**
**पटना-८०० ००१.**
**फोन - ९३३४२१९०८०, ९७०९६०२०९७**

कहानी

# मंथन

प्रोफेसर राधा रमण कभी उदास होनेवाले जीव नहीं थे. चार साल रिटायर होने को हुए लेकिन उनके चेहरे पर वही ताज़गी मौजूद थी जो कॉलेज के दिनों में थी. लेकिन इस बार जब से दिल्ली से लौटे हैं बहुत ही उदास और पूरे-पूरे दिन ख़ामोश ही रहते हैं. दिल्ली तो बेटे के पास ही गये थे. पता नहीं बेटे ने क्या ऐसा कह दिया जो....! उनकी पत्नी बीना उनकी उदासी समझती है. किंतु कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करती. डब्बू का फ़ोन आता है तो ख़ुद बात कर लेती है, लेकिन पापा से बात नहीं कराती है. चाहती भी है तो प्रो. रमण बहाना बना जाते हैं. डब्बू भी उनकी ख़ामोशी को समझता है लेकिन अपनी पत्नी प्रिया के सामने मजबूर है. प्रिया कुछ भी समझने को तैयार नहीं है. वह अपने ढंग से सब कुछ चलाना चाहती है.

बीना प्रो. रमण के पास जाती है और बताना चाहती है कि डब्बू ने किसी दलाल से पैंतीस लाख में मकान का सौदा तय कर लिया है. वह जल्दी ही आने के साथ उस दलाल को बुलानेवाला है. लेकिन कोई बात बता नहीं पाती. प्रो. रमण बीना की मनोदशा को समझते हैं लेकिन पत्रिका पढ़ने के बहाने अपने विचारों में खोये रहते हैं.

प्रिया कहती है- पापा दिन में कितनी चाय पी जाते हैं. इन्हें डायबिटीज भी नहीं होती. पूरी शक्कर तो चाय में ही ख़र्च हो जाती है. पापा इतनी ही रोटी खाइए. चावल कम खाइए. पूरे दिन खाली बैठे रहते हैं. यदि सुबह-शाम बच्चों को पढ़ा दिया करिए तो ट्यूटर को क्यों फ़ीस देनी पड़े. शाम को कुत्ते को घुमाने मुझे जाना पड़ता है. चाहे तो शाम को मम्मी के साथ शेरू को घुमा लाया करें. पर मेरी सुने तो, सुनते ही नहीं. मम्मी को लेकर घूमने जाते हैं और घंटों पार्क में बैठे रहते हैं. खाली समय पत्र-पत्रिकाओं में खोये रहते हैं. खाने में रोज़ नये-नये व्यंजन चाहिए. मम्मी भी कमाल की हैं. किचन से बाई को अलग कर देतीं और स्वयं व्यंजन बनाने में जुट जाती हैं. दिन में दस बार लैट्रिन जायेंगे और जीभ पूरे दिन लुपलुपाती रहेगी.

स्साला डब्बू है कि सब कुछ सुनता रहता है और ख़ामोश बना रहता है. मुझे डायबिटीज नहीं है तब भी चाय न पियूं? पेट का मरीज नहीं हूं तब भी पेटभर खाना नहीं खाऊं? बीस हज़ार पेंशन पाता हूं तब तो यह हालत है. बीना को पुत्रमोह सताता रहता है. पगला गयी है. एक बाप होकर मैंने क्या किया है, डब्बू भूल गया है. लेकिन बीना को तो याद करना चाहिए. उसे तो डब्बू को याद कराना चाहिए.

उसी का कितना सम्मान है! जिस दिन नौकरानी नहीं आती थी, उस दिन किचन के पूरे बर्तन उसी को मलने पड़ते थे. अपनी पसंद का साबुन नहीं लगा सकती थी. पूरे घर में प्रिया का भूत उसका पीछा करता था. मुझसे खुलकर बात नहीं कर सकती थी. नातियों से हंस-बोल नहीं सकती थी. जब हाथ-पांव चलते हैं तो यह हालत है, कल क्या होगा? दस साल जीना है तो दो साल में मर जाना पड़ेगा.

।। डॉ. विवेक द्विवेदी ।।

आज रिटायर भी हो गया हूं तो दस विद्यार्थी और प्रोफेसर्स घेरे रहते हैं. बैठक में डब्बू के दोस्त आ जायें या उससे मिलने कोई सहेली आ जाये तो तत्काल बैठक से उठना पड़ता. जैसे हम लोग 'ले मैन' हों. समय और समाज से खारिज़ कर देना चाहती है. बिल्कुल घर का नौकर बना देना चाहती है. अपने मां-बाप का परिचय पूरी बिल्डिंग वालों से करा देना चाहती है. हम लोगों को अछूत बना दिया था. डरे-सहमे बने. सबकी अम्मां हो गयी है. थू है ऐसी औलाद पर. घृणा होती है ऐसी औलाद से. अपने घर नौकर-नौकरानी रख लूंगा तो औलाद जैसा सुख मिलेगा. ग़रीब बच्चों को पढ़ाऊंगा तो भरपूर प्यार देंगे. मर जाऊंगा तो कोई भी जला देगा. मुझे नहीं चाहिए मुखाग्नि. बीना को

बहुत मोह है तो चली जाये. वहीं रहे. मुझसे कहेगी तो मैं उसे भी त्याग दूंगा. मेरा अपना घर है. परिवार है. भाई हैं, भतीजे हैं. बहन है और बहनोई हैं. मेरे यार दोस्त हैं. फिर जेब में पैसा है तो सभी अपने हैं. स्वार्थ में सही, लेकिन सेवा करेंगे. इन स्सालों के यहां धन भी ख़र्च करो और तन भी समर्पित करो, तब भी कूड़ेदान में कचरे की तरह पड़े रहो.

लोग ग़लत सोचते हैं कि एक औलाद हो. उन्हें मेरे बेटे डब्बू से सीख लेनी चाहिए. सत्तर में मैंने इस ज़मीन को तीन हज़ार में ख़रीदा था. कर्ज लेकर दो गुनी कीमत में शहर के बीचोबीच लिया था. दो साल तक ज़मीन का कर्ज दिया था. फिर एक साल नींव भरवाने में लग गये थे. पूरा मकान बनाने में पांच से सात साल लग गये थे. मेरे साथ बीना ने भी ईंट और गारा ढोया था. स्साला हरामज़ादा कहता है कि इस मकान को बेचकर दिल्ली में फ़्लैट ख़रीद दें. जिस घर को बनाने में पूरा जीवन लगा दिया, उसके अकेले के सुख के लिए मैं वर्षों की तपस्या को एक झटके से उजाड़ दूं. नहीं डब्बू मियां, मैं ऐसा कभी नहीं करूंगा. औलाद होने के नाते जो मदद चाहिए ले लो, लेकिन अब अपने जीवन में मैं तुम लोगों को कतई और प्रवेश नहीं करने दूंगा. दो महीने का अनुभव पूरे जीवन के लिए सबक बन गया है. बीना जो चाहे सो करे. मैं स्थिर पांव हो चुका हूं. तुम भी मेरे यहां मेहमान बनकर आओ. मैं जब आऊंगा मेहमान बनकर आऊंगा. मैं स्वस्थ हूं. पूर्णतः स्वस्थ हूं. क्योंकि मेरा जीवन विकाररहित है. मैंने अपने भाइयों को पढ़ाया, तुम्हारी तरह. बहनों की शादियां कीं. बेटियों की तरह. माता-पिता की सेवा की. मेरा परिवार तुम्हारे तक सीमित नहीं है. मैं बहुत बड़े परिवार का हिस्सा हूं.

प्रो. रमण की अंतर्यात्रा निरंतर जारी थी. तभी मोबाइल बज उठा. महीनों हो गये थे. न तो किसी को फ़ोन किया था और न आया था. थोड़ा चौंके. फिर नंबर देखा तो चेहरे पर चमक आ गयी. प्रो. रस्तोगी का फ़ोन था-

'हलो पार्टनर गुड मॉर्निंग!'

'यार रमण, तुमने तो मुझे भुला ही दिया. सुना है कि चुपके से दिल्ली शिफ़्ट कर रहे हो.'

'पार्टनर तुमने सफ़ेद झूठ सुना है. जिस शहर में तुम्हारे जैसे दोस्त हों, उन्हें छोड़कर एक बेटे के लिए

**२ अप्रैल, १९५८;**

**एम. ए. (हिंदी), एल. एल. बी., पी-एच. डी.**

**लेखन** : कहानी, उपन्यास, आलोचना.

**प्रकाशन** : देश के महत्वपूर्ण पत्रों एवं पत्रिकाओं में कहानियां एवं आलोचनाएं प्रकाशित.
'गांव-देश' पत्रिका में उपन्यास 'अंतरीप' प्रकाशित.
'भीष्म साहनी-उपन्यास साहित्य' आलोचना ग्रंथ (१९९८).
'एक और सच' उपन्यास (२००७), कहानी संग्रह 'शब्द-शिल्पी' (२००८), कहानी संग्रह-'आदमी और जानवर' (२००९).

**पुरस्कार** : वर्ष १९८६ में कहानी 'चैतू का आषाढ़' के लिए म. प्र. हिंदी साहित्य सम्मेलन, भोपाल का पुरस्कार. कहानी 'एक ही रास्ता' के लिए कथाबिंब पत्रिका का पुरस्कार.

**अन्य** : फ़िल्मी दुनिया मुंबई में वर्षों कई प्रोजेक्ट में असफल प्रयास.

**संप्रति** : वर्तमान में एक नये उपन्यास पर काम जारी है. नौकरी.


दिल्ली क्यों चला जाऊं?''

'वाह रमण, वाह! यही सोचकर तो मैं अमेरिका से लौट आया. बेटा वहां जाकर बेटा रह ही नहीं गया.'

'पार्टनर, बातें बहुत हैं. खैर, हम लोगों को मिले बहुत दिन हो गये. शाम को भाभी को लेकर आओ, 'शार्क इन' में चलकर एक साथ डिनर लेते हैं.'

'क्या बात है यार! 'शार्क इन' क्यों? तू शाम को भाभी को लेकर मेरे यहां आ. तेरी भाभी फुलोरीवाली कढ़ी बना रही है. हम सब साथ-साथ हंसेगे, बोलेंगे और....।'

'बीना से तुम बात कर लो. मुझसे ऐंठी है.' प्रो.

रमण ने मोबाइल बीना की ओर बढ़ा दिया. बीना ने लपकते हुए मोबाइल थाम लिया.

'भाई साहब प्रणाम. मैं ज़रूर आ रही हूं भाई साहब. लेकिन शाम को 'शार्क इन' चलना है. आज इनका जन्म दिन है.'

प्रो. रमण को यह सुकर अच्छा लगा कि आज उनका जन्म दिन है. बीना को जन्मदिन याद है. वरना बुढ़ापे में सिर्फ़ लोगों को मरण दिन का इंतज़ार रहता है. प्रो. रमण उठे और बीना का मुंह चूम लिया. फिर प्रो. रमण को लगा कहीं बीना मेरे प्यार का दुरुपयोग न कर ले. डब्बू की तरफदारी में कोई कसर नहीं छोड़ती. बीना को भी लगा मौका अच्छा है. ये ख़ुश हैं. चेहरे पर अचानक ताज़गी लौट आयी है. वैसे भी इनका ग़ुस्सा पानी में लकीर की तरह होता है. प्रो. रमण को ख़ुश देखकर वीणा बोल उठी-

'डब्बू आ रहा है.'

'कब?'

'कल'

'अकेले?'

'हां.'

'किसलिए?'

'मकान बेचना चाहता है. दिल्ली में पैंतीस लाख में मकान बुक करा लिया है.'.

'आने दो. तुम तैयार हो जाओ. ऐसा लगता है कि वर्षों बाद जेल से निकला हूं.'

उस दिन प्रो. रमण अपनी कार नहीं, बेटे की कार निकालने लगे तो बीना बोल उठी-

'बेटे की कार क्यों?'

'इसलिए कि यह कार भी मेरी कमाई की है. फिर जब बेटा अपनी गाड़ी खींचने में अक्षम हो जाता है तो बाप को जवान बनना पड़ता है.

प्रो. रमण बीना के साथ दोपहर को ही घर से निकल पड़े. दोपहर का खाना प्रो. रस्तोगी के घर पर खाया और शाम का 'शार्क इन' में लिया. दोनों परिवार नौ से बारह पिक्चर देखने गये.

प्रो. रस्तोगी के नौकर से पुरानी बरौनी को बुलाकर अपने बंगले के आउट हाउस में रहने की जगह दे दी. श्यामा अपने परिवार के साथ रात में ही आ गयी थी. देववंती को दूसरे दिन से ही खाना बनाने के लिए संदेशा भेज दिया. कई मित्रों को टेलीफ़ोन करके अपने वापस लौटने की सूचना भेज दी. दो छात्र जो उनके नीचे शोधकार्य कर रहे थे, उन्हें अगले हफ़्ते से नियमित आने का आदेश दे दिया. दूसरे दिन सुबह-सुबह बाज़ार जाकर पांच हज़ार के दो विदेशी नस्ल के पिल्ले ख़रीद लाये. बूढ़ा नौकर उन्हें गोदी में उठाने के लिए आगे बढ़ा ही था तभी एक टैक्सी गेट के पास आकर रुकी. प्रो. रमण पीछे मुड़े और बूढ़े नौकर से बोले- 'तुमने इन पेड़ों की सही रखवाली नहीं की मनसुख. सारे पेड़ मुरझाये हुए लगते हैं. ख़ैर इन्हें फिर संभालो. कटिंग करो और खाद-पानी दो.'

इतना बोलकर प्रो. रमण फिर नहीं रुके और अंदर अपने कमरे में चले गये. डब्बू दंपत्ति ने दूर से ही अपने पापा का रुख समझ लिया था. समझ तो मनसुख भी गया था. कभी प्रो. रमण, डब्बू को देखते ही अपने सीने से लगा लिया करते थे. मनसुख की गोदी में पिल्लों को देखकर डब्बू और प्रिया ने इशारों-इशारों में बात की और दोनों तिलमिला उठे. दोनों अंदर की ओर जाने के लिए जैसे ही घुसे रास्ते में मां से मुलाकात हो गयी. डब्बू ने तीखे किंतु धीमे स्वर में पूछा- 'मम्मी, पापा क्या फिर से पिल्ले ख़रीद लाये?'

'हूं.... तुम लोग अभी चले आ रहे हो क्या?' बीना ने सहजता से पूछा.

'जी हां.' प्रिया ने पांव छूते हुए कहा.

'बच्चे कहां हैं?'

'दिल्ली में....'

तब तक डब्बू पापा के कमरे में पहुंच चुका था. जहां श्यामा पोछा लगा रही थी. पापा के पांव छूते हुए डब्बू झुका और तनकर सामने रखे सोफ़े पर बैठ गया. फिर आंखें तरेरते हुए बोला- 'पापा हम लोग मकान बेचने आये हैं और आप यहां नयी गृहस्थी बसाने में लग गये?'

तब तक बीना के साथ प्रिया भी अंदर आ गयी थी. उसने भी ससुरजी के पांव छुए और बगल से बैठ गयी.

'पापा, आपने कोई जवाब नहीं दिया?' डब्बू ने उसी लहजे में कहा. बीना प्रो. रमण के सिरहाने खड़ी रही. प्रो. रमण के नथुने फूल आये. तड़फड़ाते हुए बोले-

'मि. प्रशांत रमण, जिस रास्ते से आये हो उसी रास्ते से अभी और इसी वक़्त लौट जाओ. तुम्हारे पिता

की मृत्यु हो चुकी है. यह घर, यह गृहस्थी प्रो. रमण की है. तुम्हें जो मिलना था, मिल चुका. अब सिर्फ़ पिता का नाम मिलेगा. क्योंकि नाम वापस लेना मेरे वश में नहीं है.'

'पापा.....!'

'कोई पापा-वापा नहीं. यह मकान हम पति और पत्नी ने अपने ख़ून-पसीने से बनाया था. जब इतना ही बड़ा मकान अपनी कमाई से बना लेना तब मेरे पास आना.' प्रो. रमण इतना बोलकर उठे और कैंची उठाकर बगिया में आ गये. बीना ने भी कोई तबज्जो नहीं दी. वह देववंती को पुकार कर यह कहते हुए बगिया में आ गयी, 'देववंती इन्हें पानी और चाय की ज़रूरत हो तो पूछ लेना.'

डब्बू का दिल धक-धक करने लगा था. लेकिन प्रिया डब्बू का हाथ पकड़कर बाहर निकली और अटैची उठाकर चल दी. प्रो. रमण बारी-बारी से पेड़ों की कटाई-छटाई कर रहे थे. डब्बू और प्रिया दोनों जन बंगले के बाहर चले गये. पूरे दिन किसी ने डब्बू और प्रिया के संबंध में किसी से कोई बात नहीं की. शाम ढलते ही बूढ़ा नौकर मनसुख प्रो. रमण के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया.

'साब जी! मैंने बचपन से उसे गोदी में खिलाया है. सिर्फ़ एक बार मिल लीजिए. फिर वह चला जायेगा. इतना बोलकर उसने डब्बू को पर्दे की ओर से बाहर निकाल कर सामने कर दिया.

'पापा, हम लोग मकान बेचने की बात कभी नहीं करेंगे. सिर्फ़ एक बार हमें क्षमा कर दीजिए. आप ही तो मम्मी से कहते थे- बच्चे ही ग़लती करते हैं. ग़लती से ही सीखते हैं.'

प्रो. रमण ने आंखें उठाकर ऊपर की ओर देखा- सामने डब्बू और प्रिया डबडबाई आंखों से उनकी ओर निहारते खड़े थे.

**राजीव मार्ग, निराला नगर,**
**रीवा (म. प्र.) ४८६००२**
**मो. ९४२४७७०२६६**

**लघुकथा**

# गुम हुए रिश्ते

**राज कमल सक्सेना**

'पापा, आपके पापा को क्या कहेंगे?' नन्हीं गौरी ने पापा के गले से झूलते हुए पूछा.

'बेटा, दादाजी.'

'और आपकी मम्मी को?'

'बेटा, दादी.'

'और आपके बड़े भाई को?'

'ताऊजी!'

'और छोटे भाई को?'

'चाचा.'

और रिश्तों की जानकारी का यह क्रम क्रमशः बढ़ता ही चला जा रहा था.

'अब, चल हट उतर.' थके-मांदे मुकुलजी ने गौरी को गोद से उतारते हुए कहा.

'पापा, प्लीज़ बता दो न! मुझे होमवर्क में लिखना है, नहीं तो कल स्कूल में मैडम डांटेगी.' गौरी ने भोलेपन से कहा.

'होमवर्क में ये लिखना है? मुकुलजी ने आश्चर्य से पूछा.

'हां! पापा होमवर्क में लिखना है और बताना है- ये देखिए पाठ चार में पूछा है.' गौरी ने किताब दिखाते हुए मुकुलजी से कहा.

पाठ पढ़ते-पढ़ते मुकुलजी अचानक चालीस बरस पहले अपने बचपन में लौट गये. भरा-पूरा संयुक्त परिवार- दादा-दादी, चाचा-चाची, मामा-मामी और मौसियों का सानिध्य पा कर बड़े हुए मुकुलजी लुप्त होते जा रहे इन रिश्तों पर सोचने को मजबूर हो गये. वे सोच रहे थे- 'कहां गये ये रिश्ते? उन्होंने तो कभी किसी किताब में ये रिश्ते नहीं पढ़े?'

**१०४, कुटुंब अपार्टमेंट, बलवंत नगर, थातीपुर (मुरार), ग्वालियर-४७४००२**

## आमने-सामने

# 'जन्म से मैं कहानीकार'

कुंवर प्रेमिल

**बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखन केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा और आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन' से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है कुंवर प्रेमिल की आत्मरचना.**

मैं जब अपने प्यारे से गांव में जन्मा होऊंगा तब ज़रूर मेरी ख़ुशियों का ठिकाना नहीं रहा होगा, अजी साहब गांव होती ही है ऐसी प्यारी चीज़ जो छोड़ते न बने. मैंने गांव छोड़ा भी नहीं है. शहर में रहकर भी मैं आज भी पूरा गांवमय हूं. पत्नी जब-तब टोकती है अजी कैसे आदमी हो जी, जो सुधरना नहीं चाहते. शहर में गांव लेकर घूमते हो जी (घर, आंगन और गिरगिटानः 'कथाबिंब'.)

ये शहरी लोग गांव की कीमत क्या जानें-पहचानें. मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत है गांव. गांव आदमी की पहचान है, गांव है तो सौरभमयी प्रकृति साथ है. नदी-नाले हैं, कछार हैं, बांस वन, बगुले, गरजते-घुमड़ते घन, नाचते मयूर हैं कोई यदि यहां पर आकर घंटा भर भी खड़ा रह जाये तो आधा कवि बन जाये. पुण्य सलिला नर्मदा के हरे-भरे किनारे, जाल फेंकते मछुए, टिटहरियां, चकवा-चकवी, गिलहरियां, लहरियां, मछलियां, बांकी हिरणियां, कविता करने के लिए यथेष्ट नहीं हैं क्या?

अजी, आप चाहें तो बायो डाटा निकालकर देख लें, कितने प्रतिशत साहित्यकार, कलाकार गांव से हैं. गांव कल्पना शक्ति हैं, ऊर्जावान हैं गांव, कुछ कर गुज़रने की अदम्य इच्छा शक्ति रखते हैं गांव. ज़रूर कम कमाता है पर शहर का सहोदर भ्राता है यह. मैं जब तक कहानियां न सुनूं, नींद नहीं आती थी मुझे. घर में माताजी, दादीजी सभी कहानीकार थीं. राजा-रानी की कहानियां माताश्री कहती थीं.'कित सायर कित नीर' कहानी तो दो-तीन रातों तक चलती थी. दादीजी परियों, जानवरों, पक्षियों, मछलियों की छोटी किंतु सुंदर कहानियां कहती थीं. काठ के सायकरन घोड़ा कहानी की काल्पनिक उड़ान मुझे सपनों में भी उड़ानें भरने के लिए यथेष्ट थीं.

राधा-कृष्ण के गीत - मैं आ जाऊंगी बड़े भोर, दहिया लेकर आ जाऊंगी बड़ी भोर. ठुमुक ठुमुक राम चलें बाजे पैजनियां, मोरी लाज राखो गिरधारी, मैं आयी शरण तिहारी, दादीजी गाती थीं. सुबह-सुबह आटा पीसते समय, 'सूरजमल उगियो' जैसा प्यारा गीत सुनकर नींद और प्रगाढ़ हो जाती, मन करता था कि चक्की कभी बंद न हो, गीत कभी बंद न हो,' कल्पना की उड़ानें कभी बंद न हों, सब कुछ वैसा का वैसा अनवरत चलता रहे.... चलता रहे.

मेरे लिए हीरे-मोती से कम न थीं वे कहानियां, चौपालों, खेतों-खलिहानों में तमाम कहानियां बिखरी पड़ी थीं. जितने कहानीकार, उतने ही उनके श्रोता. बिना पढ़े-लिखे कहानीकारों का ज्ञान इतना विस्तृत इतना पुख़्ता कि मन वाह-वाह कह उठे. कहानियां इतनी जीवंत होती थीं कि उनका स्पंदन महसूस किया

जा सकता था. श्रोताओं को बांधने में सक्षम होती थीं वे. श्रोता को कहानी अच्छी लगे यह कहानी की पहली शर्त है और कहानीकार को भी पूर्ण कौशल प्राप्त होना चाहिए. दूसरी शर्त है. श्रोता हो या पाठक, कहानी से भावनात्मक रूप से जुड़ जाये तभी उसे सफल कहानी समझी जाये. तभी न उसकी महत्ता, विश्वसनीयता, महानता, सकारात्मकता प्रतिपादित होगी. अतिश्योक्ति न समझें तो कहानी में वशीकरण होना चाहिए जी. मुझे तब यह कहां पता था कि कहानियां लिखी भी जाती हैं. मैं सबसे पहले कवि बना या कहानीकार यह आज तक पता नहीं लगा सका. बनने को तो कवि, कहानीकार, व्यंग्यकार, लघुकथाकार सब कुछ बना, पर बना मैं सब अपने गांव की ही बदौलत. साहित्यिक रुझान घर से ही बनी. सच साहित्य है ही ऐसी चीज़ कि उस पर सब कुछ लुटाने को जी चाहे. गाहे-बगाहे जिसके पास पढ़ने को साहित्य है, मनन करने को साहित्य है, उसे किसी और फितरत से वास्ता क्या है?

तब गांव, प्रेमचंद के साहित्य से भरे पड़े थे. क़स्बे की लायब्रेरी में प्रेमचंद की कहानियां, उपन्यास ठसे पड़े थे. लोग प्रेमचंद को पढ़ते थे. जनवादी थे वे. ग़रीबों, अछूतों, असहायों के दिलों में धड़कते थे. गांववालों की गहरी आस्था उन पर थी. वे उनकी कहानियां ही तो लिखते थे.

पिताजी धर्मयुग, हिंदुस्तान भी लाते थे. आपस में अदल-बदलकर किताबें, पत्रिकाएं, लालटेन के मद्धिम उजाले में भी बड़े चाव से पढ़ी जाती थीं. यह वह जमाना था जब गांव के लड़के शहर पढ़ने जाते थे और बिजली के खंभों के नीचे पढ़कर डॉक्टर, इंजीनियर बन जाते थे. जूते नहीं ले पाये तो क्या, चप्पलों से ही काम चला लेते थे. चौपालों में बी.बी.सी. लंदन बड़े चाव से सुना जाता था. क्या दिन थे वे जब दिन भर खेतों में काम, रात में साहित्य सुधा, क्षुधा शांत ही नहीं होती थी. ज़्यादा से ज़्यादा जानने समझने की उत्सुकता, ज्ञान पिपासा, हर कोई हर किसी की मदद के लिए तत्पर, ईर्ष्या, जलन, भेदभाव की नहीं थी कोई टक्कर.

आनंदमयी ज़िंदगी थी गांव की. ज़्यादा पाने की होड़ नहीं, कम मिले का कोई अफसोस नहीं. मेरे पिताश्री एक बिना छपे कहानीकार थे जो विशेषतः जातिगत-भेदभाव एवं छुआछूत उन्मूलन की कहानियां लिखते थे. उनके श्रोता बड़े मुकद्दम, छोटे मुकद्दम, बारे दादा, नन्हे वीरा, टुंडा धोबी, बड्डा चौधरी थे. बड़ों और छोटों के बीच सामंजस्य बैठाने में पिताश्री एक अच्छी कड़ी थे. उनकी 'राधिया' कहानी ने सचमुच बड़ों-छोटों के बीच भेदभाव कम कर किये थे. उन दिनों वे सब इज़्ज़त से जीते थे.

प्रायमरी की पढ़ाई करने दूसरे गांव जाना पड़ता था. एक नदी को तीन बार क्रॉस करना पड़ता था. पांव बर्फ हो जाते थे पर मजाल है कि एक दिन का नागा हो जाये. गुरूजी तब महा-नीम की छड़ी से पीटा करते थे. घुटनों के नीचे कंकड़ रखकर घुटने टिकाया करते थे. गुरू जन पीटा करें ढोल की नाई ऊपर से मां-बाप कहते, मांस-मांस तुम्हारा, हड्डी-हड्डी हमारी. जब मैं चौथी कक्षा में गया, तब हमारे हेडमास्टर ख़ुद चौथी पास थे.

हमारी टीम की गैंग लीडर त्रिवेनी बुआ थीं. उनके मार्गदर्शन में सबको चलना होता था. वे आदेश देतीं तभी नदी का पानी पिया जाता, झरबेरी खायी जाती, विश्राम किया जाता. कभी-कभी नदी की रेत में दूल्हा-दुल्हन का खेल खेला जाता. लड़के दूल्हा बनते तो लड़कियां दुल्हन बनतीं, उनकी शादी करायी जाती, सुहागरात भी मनायी जाती. त्रिवेणी बुआ के हाथ में हमेशा एक छड़ी शोभायमान रहती, जिसे वह जब चाहें, जिसे चाहें चिपका देतीं. छोटा हो या बड़ा डिसिपिलिन तो सबके लिए ज़रूरी है न. स्कूल का पहला दिन मुझे बड़ा रोमांचक लगा था. स्कूल के दरवाज़े से तनिक दूर रास्ते के दोनों ऊंचे-ऊंचे ताड़ वृक्ष हहर-हहर कर भूत का भय पैदा कर रहे थे. मैं एक पैर आगे बढ़ाता तो दो डग पीछे हटा लेता. गांव का भुतहा दरवाज़ा पार करते समय साथ में प्रेमचंद थे, धर्मयुग था, यहां क्या था सिवाय भय से भयभीत होने के. पिंडलियां कांप रही थीं, नन्हा दिल बुरी तरह धड़क रहा था. यह वह ज़माना था जब भूत-चुड़ैल का डर छोटे से लेकर बड़ों तक हावी रहता था. यह तो बाद की कक्षा में पता चला कि कविवर रवींद्रनाथ टैगोर भी अपने घर के पास के ताड़ वृक्षों को देखकर भूत भय से कांपा करते थे. वह असहज हो जाते थे. भय का भूत मामूली कहां होता था. तभी एक समवयस्का ताड़ वृक्ष

## कुंवर प्रेमिल की लघुकथाएं

# भूख

रात्रि में भेड़ों का झुंड एक गांव के पास से गुज़रा तो अंधकार की वजह से भेड़ का एक बच्चा गांव के पास ही छूट गया. सुबह एक आदमी वहां से निकला तो सफ़ेद बालों वाले मेमने को देखकर ख़ुश हुआ- ''या खुदा, डूबते को तिनके का सहारा बहुत. भूख से तड़फते परिवार को कुछ राहत मिलेगी.''

उसने मन ही मन परमात्मा को धन्यवाद दिया. सफ़ेद मेमना, ऊषा की रक्ताभ किरणों से नहा उठा था. वह आदमी की हथेली को अपनी जीभ से चाटकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर रहा था.

''बाबा, इसे खाने के लिए लाये हो''- भूख से व्याकुल पुत्र ने पिता से पूछा.

''जल्दी काट गिराओ इस मेमने को- बच्चों के मुंह में दो दिनों से अन्न का दाना तक नहीं पड़ा है.'' पत्नी ने कहा और ज़मीन पर वहीं बैठ गयी.

आदमी दूर एक उगते हुए सूरज को देख रहा था. उसे दिखाई दे रहा था- रक्ताभ हुआ सफ़ेद.... ऊनी गोला .... हाथ चाटता हुआ नन्हा मेमना.... उसकी प्यारी-प्यारी गोल-मटोल आंखें...

''कुछ सुना नहीं''- पति को ध्यानमग्न देख पत्नी ने टोका.

''सुनो, एक दिन और भूख सह लेते हैं''- आदमी ने उछलते-कूदते मेमने को देखकर कहा और एक हाथ से भूखे पेट को दबाते हुए घर से बाहर निकल गया.

# कहां नहीं है मां !

जब भी कभी मैं बाहर से थका-हारा लौटता हूं, मेरी पांच साला बेटी ठुमुक-ठुमुक चलकर एक गिलास पानी लेकर खड़ी हो जाती है. मुझे अपनी स्नेहमयी मां की याद ताज़ा हो जाती है. जब मैं खाना खाने थाली पर बैठता हूं, मेरी पत्नी पंखा झुलाने लगती है. मुझे अपनी पत्नी में मां के दर्शन हो जाते हैं. बहिन जब ठंड के दिनों में मेरे लिए स्वेटर बुनने लगती हैं, मुझे अपनी मां याद आ जाती है.

कहां नहीं है मां, बस देखने-महसूस करने की बात है. चप्पे-चप्पे में मां समायी हुई है. दीवाल पर माला टंगी मां की फ़ोटो, हर समय आशीर्वाद देती हुई क्यों महसूस होती है?

मां कभी मरती कहां है? वह हमारे चारों ओर रक्षा कवच बनी दृष्टिगोचर होती रहती है. धन्य है मां तेरी महिमा, तेरे रूप, हर समय खड़ी मुस्कुराती हुई अपनी संतानों का संबल बनी रहती हो. हे मां तुम इस दुनिया में अजर-अमर हो, धन्य हो मां, धन्य हो.

# थानेदार सूरज सिंह

एक लड़का टेढ़ी-मेढ़ी गलियों से निकलकर दौड़ता-हांफता शहर के चौराहे के मध्य में आकर रुक गया. थोड़ी देर सुस्ताकर उसने बड़ी श्रद्धा से उगते सूरज को नमस्कार करने की मुद्रा में हाथ जोड़े ही थे कि जालिम थानेदार सूरज सिंह परिहार ठीक उसके सामने आ खड़ा हुआ.

'क्यों बे, सूरज सिंह परिहार के रहते इस बित्ते भर के सूरज की क्या बिसात है जो उसे सिर नबाता है-ऐं.'

दैत्याकार सूरज सिंह को देखकर लड़का सकपका गया. उसकी बोलती बंद हो गयी. जालिम सूरज सिंह की क्रूरता के कई किस्से कई-कई बार सुने थे उसने.

लड़का घबराकर बोला- ''सूरज तो आपके पीछे है सर, आपके रहते मुझे उस सूरज से क्या डर. हाथ तो मैंने आपके ही जोड़े थे श्रीमान. भला आपके सामने उस सूरज की बिसात क्या है जो...''

हः हः हः थानेदार सूरज सिंह हंसा. बोला- 'सूरज को हाथ जोड़ने से पहले अपने आसपास इस सूरज सिंह को ज़रूर देख लिया कर, समझा.... अब चल फूट यहां से .... नेताजी की सवारी निकलनेवाली है यहां से.... '

लड़का फिर उसी तरह दौड़ता-हांफता शहर की उन टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में गुम हो गया. थानेदार की हंसी बहुत देर तर उसका पीछा करती रही.

के पीछे से निकलकर मेरे पास चली आयी. मुझे रोता-बिसूरता देखकर शायद उसे दया हो आयी. अपनी टोकनी से चंपा का एक फूल देती हुई वह बोली. 'यह चंपा का फूल अपने पास रखना, फिर बिलकुल डर नहीं लगेगा. हां!'

जब भी मैं उधर से निकलता वह लड़की फूल देना कभी न भूलती. वह ख़ुद भी मुझे भुलाये नहीं भूलती. फूल की ख़ुशबू आज भी मेरे जेहन में गहरे ख़ूब गहरे घुली हुई है. उसकी छवि आज भी धूमिल कहां हुई है, वह गांव की लड़की आजकल अमेरिका में है और त्रिवेणी बुआ से अक्सर मेरे बारे में पूछती रहती है. मिडिल स्कूल की पढ़ाई क़स्बे में हुई. वहां शकुनी देवी मेरी लड़की मित्र बनी. सांवली थी पर आंखें गहरी थीं. वह शरीफे के पेड़ों पर चढ़कर पढ़ा करती. इशारे से मुझे वहां बुलाती. एक दिन मैं न जाने किस मोहपाश से बंधकर झाड़ पर चढ़ गया. शकुनी ने मुझे पकड़ा और चूम लिया. तब पेड़ से गिरते-गिरते बचा था मैं. मैं उसके बाद न जाने कैसा-कैसा हो गया था. नींद लगते ही कभी शकुनी, कभी चंदा के फूलवाली लड़की सपने में आतीं और मुझ पर अपना-अपना हक जतातीं.

कॉलेज में मिली सरोज देवी. मैं न जाने कब उन्हें बी. सरोजा देवी कह बैठा. बी. सरोजा देवी ससुराल फ़िल्म की हीरोइन थी. उनका दिया हुआ रेशमी रुमाल आज भी मेरे अंतर्मन की तहों में कहीं गुंजलक मार कर बैठा है. इन तीनों का दिया प्यार और अपनापन, दीवानेपन में तब्दील होता गया और मैं कवि, कहानीकार बनता चला गया. डगर-मगर चलता गया, अपने भीतर प्यार का अनोखा ताज़महल गढ़ता गया. प्यार का वह अद्भुत खुमार मुझ पर इस साठोत्तरी में भी वैसा का वैसा चढ़ा हुआ है जो उतरने का नाम ही नहीं लेता है. यह प्यार अजीब होता है, जो कभी आज तक परिभाषित नहीं हुआ. कहीं व्याख्या नहीं की जा सकी, बेचा-ख़रीदा नहीं जा सका. यह एक दिन वट-वृक्ष बनकर खड़ा हो जाता है, फिर इसी में से प्यार की पतली-पतली अनेकों शिराएं निकलती हैं जो फिर से ज़मीन में गड़कर मुकम्मल मज़बूती प्रदान करती हैं. तब कोई भी झंझावात, तूफान, भूचाल उसे डिगा नहीं पाते. इसकी सुगंध पीढ़ियों दर पीढ़ियों तक महसूस की जा सकती है. प्यार कभी मरता नहीं है. आज तक नहीं मरा तो आगे क्या मरेगा. कौन मारेगा इसे. आप सारे सवाल हल करते हैं पर प्यारे, प्यार के सवाल कोई हल नहीं कर सका. जिसे प्यार का तोहफ़ा मिला वह अमर हो गया, भ्रमर हो गया. आशिकी की जड़ बहुत गहरी है, यह एक ठौर कहां ठहरी है. प्यार की यह पीर हीर-रांझा, लैला-मजनूं, सोहनी-महिवाल से लेकर आज तक ज्यों की त्यों रची-बसी है. प्यार की यह पूजा राधा-कृष्ण से चलकर आज तक जन-जन में बसकर नित नये रूपों में बिखरी पड़ी है. प्यार हमारा गुरू है, प्यार से ही पूरी दुनिया शुरु है. दुनिया एक लव गुरू है.

मैंने अपनी पहली कविता तिलक जी पर अपने स्कूल में पढ़ी थी. तब मैं स्कूल का बाल कवि बन गया था. साहित्यिक सांस्कृतिक कार्यक्रम का शुभारंभ मुझसे ही होता. एक बार हमारे स्कूली कार्यक्रम में जबलपुर के प्रसिद्ध कवि नानाजी पधारे थे. सफ़ेद कुर्ता, सफ़ेद पज़ामा, सफ़ेद दाढ़ी में नानाजी ख़ूब जम रहे थे. उस दिन बिजली के कीड़े, मक्खियां कुछ ज़्यादा ही नानाजी की दाढ़ी में घुसपैठ कर रहे थे. मैंने उनकी दाढ़ी से कीड़े-मकोड़े निकालना शुरु कर दिया. नानाजी मेरी कविता सुनकर गदगद हो गये. उन्होंने खींचकर मुझे अपनी गोदी में बैठा लिया. मुझे लगा जैसे मैं किसी राज सिंहाहन पर बैठ गया हूं. उन्होंने अपने थैले में से पराग, बालभारती, चंदामामा के अंक मुझे भेंट किये. सच अपनी ज़िंदगी में पहली बार मैं इतना ख़ुश हुआ था. उस दिन के साहित्यिक परिवेश ने मुझे गहरे ख़ूब गहरे तक छुआ था.

गाडरवारा हाईस्कूल से निकलकर मैंने नरसिंहपुर म. प्र. डिग्री कॉलेज में दाखिला ले लिया. साइंस का विद्यार्थी था पर साहित्य प्रेम यहां कुछ और बढ़ गया था. सन् १९६२ में भारत-चीन का खूंरेजी युद्ध हुआ. हिंदी चीनी भाई-भाई कहते-कहते चीन ने भाई की पीठ में कटार भोंकी थी. मैंने इस पर एक कविता लिखी थी. जो कॉलेज की मैग्जीन में भी छपी थी-

लाल चीन,
लाल रक्त,
मौत की जमात है....

आज उस कविता की मात्र ये तीन पंक्तियां ही याद हैं. लेकिन उस समय मेरी इस कविता ने मेरे सहपाठियों, गुरूजनों में एक सुगबुगाहट पैदा कर दी थी. जिसने

कविता सुनी, उनी ने चीन को तबियत से गरियाया था.

सन १९६६ में भारतीय सर्वेक्षण विभाग के तहत जबलपुर में नौकरी मिली. उड़ीसा और बस्तर के घने जंगलों में सर्वेक्षण कार्य अति दुरूह था. जानवरों के डर से कई लोग नौकरी छोड़कर भाग चुके थे, पर मैं जमा रहा. जंगलों के जीवंत दृश्यों ने मुझे कसकर बांध लिया था. परिणति शिकार कथाओं के लेखन से हुई. धर्मयुग में 'चमेली जान' और कादंबिनी में लगभग छ शिकार कथाएं प्रकाशित हुईं.

धर्मयुग के संपादक धर्मवीर भारती थे जो नवोदितों को भी भरपूर सम्मान देते थे. उस वक़्त धर्मयुग बुलंदी पर था. बाज़ार में आते ही फटाफट बिक जाता था. हर एक अंक का विज्ञापन देश के बड़े-बड़े अख़बारों में दिया जाता था. भारती जी ने मेरे स्वीकृति पत्र में अपने हाथ से लिखा था-

'आपके पास बहुत सुंदर शैली है. धर्मयुग रंगीन पत्रिका है. रचना के साथ चित्र अवश्य भेजें. शुभकामनाएं.' मेरी मानें तो उनकी शुभकामनाएं आज तक मेरी रक्षा कवच बनी हुई हैं.

उन दिनों जबलपुर में तीन बड़े अख़बार - युगधर्म, नवभारत, नवीन दुनिया निकलते थे. नवीन दुनिया के साहित्य संपादक डॉ. राजकुमार तिवारी सुमित्र थे. बाद में सुमित्र जी नवीन दुनिया के प्रभारी संपादक मनोनीत हुए. उन्होंने मेरी कई कहानियां, कविताएं, लघुकथाएं अख़बार के साप्ताहिक परिशिष्टों में छापीं. तब से अब तक उनका आशीर्वाद मुझे बिना किसी कोताही के मिल रहा है. रचनाएं नवभारत, युगधर्म में भी ख़ूब आयीं. उस ज़माने में एक कविता का पारिश्रमिक सात रुपये हुआ करता था. पारिश्रमिक प्राप्त होने पर मन बल्लियों उछलता था.

सन् १९८७ में 'साक्षात्कार' के संपादक स्व. सोमदत्त ने मेरी काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर एक पत्र लिखा था तथा पत्रिका के लिए आमंत्रण भी. पत्र में आगे लिखा था- 'लिखने-पढ़नेवालों के बीच रचनात्मक रिश्ता और भाईचारा कितना प्रेरक हो सकता है यह हमें अपने अग्रज शमशेर, नागार्जुन, त्रिलोचन केदार की पीढ़ी से सीखना चाहिए. आशा है आप बिना किसी की चिंता किये पढ़ना-लिखना ज़ारी रखेंगे. मूल्यवान साहित्य को जनता के बीच अध्येता के बीच स्वीकृति अवश्य मिलती ही है भले कुछ देर लगे-

आपका समोदत्त.'

यहां मैं अपनी एक कविता प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूं-

ज़िंदगी को जितने
क़रीब से देख सको देखो
तभी, तुममें आदमियत का संचार होगा
तभी, ईमानदारी बरतोगे ख़ुद से
तटस्थ ईमानदारी बरतोगे ख़ुद से
तटस्थ रहना नपुंसकता है
और चाहे जो हो, कैसा कुछ क्यों न हो,
आधारहीन कदापि न हो
क्योंकि-
लोग कहते हैं कि घुटने टेकना
और घुटना रखना
दो अलग-अलग बातें हैं
पर, मेरी नज़र में एक ही हैं ये
या यूं कहो कि आदमी का
एक घुटना रखने के लिए
तो दूसरा घुटना टेकने के लिए हुआ करे
वह जब तक जिये तब तक यही किया करे.
पर जब बात रोटी की होती है तो
ज़िंदगी की सारी फिलॉसफी
एक तरफ रखी रह जाती है.
दिखता है पेट, रोटी और कुत्ता घसीटी.
उसकी रोटी कौन खींच ले गया
आदमी या कुत्ता
एकाध रोटी खींचता है कुत्ता
बदले में अमन चैन सींचता है कुत्ता
पर पूरी तरह खींचकर उसे
कौन दे गया बुत्ता/आदमी या कुत्ता
यह आदमी क्या कुछ नहीं सहता है.
कटता है, बटता है, रोता है, चीखता है,
चिल्लाता है, पर जुड़ता है कब?
अभी-अभी
बांसों के जंगल से
एक तूफान गुज़रा है
कटे-कटे से लोग

व्याकुल भयातुर हैं,
एक दूसरे से जुड़ने को आतुर हैं.

मैं अपने गांव की सुंदरिया को आज तक नहीं भूला हूं. जिसकी मौत ने मुझे कितना संवेदनशील बना दिया था. मैंने सुंदरिया की याद में एक कविता लिखकर उसे हार्दिक श्रद्धांजलि दी थी-

मैंने देखी थी एक सुंदरिया
जब छोटी थी
नंदी पोखर में मछली फंसाते
चट्टानों पर थकान मिटाते-सुस्ताते,
मैंने देखी थी एक सुंदरिया
उसकी चड्डी आगे-पीछे
दोनों ओर फटी हुई थी
दोनों हाथों से अपनी लाज बचाते-छुपाते,
मैंने देखी थी एक सुंदरिया
लाल सुर्ख चूड़ियां पहने
धानी चुनरिया ओढ़े
अपनी ससुराल जाते-लजाते,
मैंने देखी थी एक सुंदरिया
उसकी सास मारती पीटती
बेवड़ा पति नोंचता-खसोटता
सुबह सूनी आंखों से काम पर जाते-आते,
मैंने देखी थी एक सुंदरिया
उसके मरने पर कोई कहां रोया
त्रयोदशी भी संपन्न हुई क्या
नदी में गठरी बांधकर फेंकी गयी
बीच धार में गठरी सी बहते-बहाते,

और उन लोगों की वासनामयी आंखों को हरिद्वार के घाट पर मैंने जब महसूस किया तो अंदर तक कांप-कांप गया-

हरि-हरि कहते हुए
वह नहाकर निकली नदी से
तभी उसका आंचल अचानक खिसक गया,
घाट पर खड़े लोग
अपलक देख रहे थे उसे-ऐसे
देख रहे हों अजंता ऐलोरा
खजुराहो के भित्ति चित्र जैसे.

मैं तब लघुकथा से बिल्कुल अपरिचित था, कहानियां ज़रूर लिख रहा था. 'नया ज्ञानोदय' निकल रहा था, संपादक का पत्र रचना आमंत्रण का मिला तो लघुकथा पर कलम आजमायी. लघु आघात में पहली रचना छपी, तब तक सारिका के लघुकथा विशेषांक १९८४ के लिए बत्तरा जी का पत्र मिला. 'बिन बुहरे आंगन' लघुकथा 'सारिका' में छपी तो अपने ऊपर विश्वास होना लाजिमी था. नई दुनिया, दैनिक भास्कर, कंचनप्रभा, कथाबिंब से लेकर पचीसों पत्र-पत्रिकाओं, संकलनों में लघुकथाएं आयीं. एक सौ चौदह लघुकथाओं का स्वयं का संकलन 'आनुवांशिकी', मांडवी प्रकाशन गाजियाबाद से प्रकाशित हुआ. अक्षर ख़बर, त्रैमासिकी में जबलपुर के लघुकथाकारों को लेकर जबलपुर परिशिष्ट संपादित किया, फिर 'ककुभ' का संपादन और वर्तमान में 'प्रतिनिधि लघुकथाएं' वार्षिकी का संपादन जारी है. कभी सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार डॉ. शंकर पुणतांबेकर ने अपनी पुस्तक 'व्यंग्य यात्रा' में उभरते दशक के लघुकथाकारों में मेरा नाम शामिल किया था, संभावना सच ही तो साबित हुई.

लघुकथा आज की ज़रूरत है. आज उसके पाठक हैं. लघुकथाएं न हों तो कहानियां अजन्मी रह जायें. कहानी माटी की जन्मजात सुगंध है. खेत-खलिहान, कल-कारखाने, घर-समाज कहां नहीं हैं वह. कहानी हमें धरोहर के रूप में मिली है. सच पूछो तो यह आदमी को वतन परस्ती सिखाती है. उसे सहेज कर रखना हमारा धर्म है. कहानी को उसके रहमोकरम पर बिल्कुल नहीं छोड़ा जाना चाहिए.

कहानियां का खाता बाकायदा खुला तो फिर बंद नहीं हुआ. मधुप्रिया, मध्यप्रदेश संदेश, उत्तर प्रदेश, राष्ट्रदूत, कहानियां मासिक चयन भोपाल अहल्या, मुक्ता, सरस सरल, समकालीन अभिव्यक्ति, कहानीकार, कथाबिंब, मसि-कागद तथा कहानी विशेषांकों, संकलनों, प्रसारणों में अब तक चालीस के करीब कहानियां प्रकाशित, प्रसारित. स्वयं की कहानियों का संकलन 'चिनम्मा' मांडवी प्रकाशन गाजियाबाद से प्रकाशित हुआ.

ऐसा नहीं कि इसमें बच्चों के लिए कुछ नहीं लिखा गया. चंपक, पराग, लोटपोट, सुमन सौरभ, समझ झरोखा, बच्चों का देश, बालभारती, हंसती दुनिया में बाल रचनाएं भी ख़ूब प्रकाशित हुईं. मैं गांव के हरीराम नाई को ख़ूब जानता हूं. पहले वह नाकारा था. जब से गांजे की चिलम फूंकी, तब से उसकी टोन ही बदल

गयी. अंग्रेजी, सुराज, खादी और प्रजातंत्र की जितनी बातें हरीराम जानता है उतना गांव प्रधान भी नहीं जानता.

व्यंग्य में प्रवेश के लिए हरीराम नाई ही जिम्मेदार है बस. नागपुर से निकलनेवाले नवभारत के दीपावाली होली विशेषांकों की शृंखला ने मुझे व्यंग्यकार बना दिया. नवनीत, नई गुदगुदी, व्यंग्य यात्रा, अट्टहास, अख़बारों के साप्ताहिक अंकों में व्यंग्य छपते रहे. काफिला चलता रहा... चलता रहा... अनवरत चलता रहा... जिसकी परिणति 'आम आदमी, नीम आदमी' व्यंग्य संग्रह तथा प्रदक्षिणा बाल किशोर उपन्यास के रूप में हुई.

लेखन संघर्ष मांगता है, वह मैंने किया है, कितना फल मिलेगा, यह मैं भी नहीं जानता. अपने भविष्य का पता भविष्यफल बतानेवालों को भी पता नहीं होता. कर्म कर, फल की चिंता मत कर. यह है गीता का ज्ञान. गीता हमारे समाज परिवार में कितने गहरे तक रची-बसी है, समझने की बात तो है. साहित्य समाज को जोड़नेवाली कड़ी है, क्योंकि साहित्य ने भी अपनी प्राण प्रतिष्ठा के लिए बड़ी लड़ाई लड़ी है. अपने लिए नहीं, ज़ो कुछ बन पड़ा साहित्य के लिए किया है. जिस देश का साहित्य अजर-अमर है, निष्कलंक है उसे कोई क्या मार सकेगा. साहित्य सर्जना तीर्थ है, मंदिर है, मस्जिद है, काबा है.

लोग कहते हैं कि मीडिया के कारण साहित्य की भिनिष्ठा हुई है, मैं न पास्ट की कहानी जानता हूं न भविष्य की. चरैवेति चरैवेति का पक्षधर हूं. साहित्य को ज़िंदा रखना पड़ेगा नहीं तो आदमी मर जायेगा और इस आदमी के लिए मुनासिब है....

*दोस्ताना मिजाजवालों से, नामुनासिब दूरियां रखना*
*एक दूजे को जोड़ने के लिए छोटी-छोटी कहानियां रखना.*

- डॉ. मधुर नज़्मी

**एम.आई.जी.८, विजय नगर, जबलपुर-४८२००२ म.प्र. मो- ९३०१८२२७८२**

## : प्राप्ति-स्वीकार :

**तीन बीघा ज़मीन** (उपन्यास): **सुषमा अग्रवाल**, हिंदी साहित्य निकेतन, १६ साहित्य विहार, बिजनौर-२४६७०१. मू. २०० रु.
**त्रिकोण के तीनों कोण** (रपटें): **हरीश पाठक**, प्रभात प्रकाशन, ४/९, आशिफ अली रोड, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २५० रु.
**हम जहां हैं** (ल. सं.): **पवन शर्मा,** भावना प्रकाशन, १०९-ए, पटपड़ गंज, दिल्ली-११००९१. मू. ३०० रु.
**प्राइवेट पब्लिक और भूमंडलीय यथार्थवाद** (गद्य): **सं. संज्ञा उपाध्याय,** शब्दसंधान प्रकाशन, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली-११००६३. मू.१०० रु.
**इस शहर में** (ग़. सं.): **रमेश प्रसून**, अमित प्रकाशन, के. बी.९७, कविनगर, गाजियाबाद-२०१००२. मू. १५० रु.
**धूप से रूठी चांदनी** (क. सं.): **डॉ. सुधा ओम ढींगरा**, शिवना प्रकाशन, बस स्टैंड, सीहौर-४६६००१. मू. ३००रु.
**ख़याल के फूल** (ग़. सं.): **मेयार सनेही**, अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. १२० रु.
**जो कहूंगा सच कहूंगा** (ग़. सं.): **महेश अग्रवाल**, उत्तरायण प्रकाशन, एम-१६८, आशियाना, लखनऊ-२२६०१२. मू. १५० रु.
**सुरबहार** (ग़. स.): **ऋषिवंश**, नमन प्रकाशन, ४२३१/१, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. १५० रु.
**चांद पर चांदनी नहीं होती** (ग़. सं.): **मेजर संजय चतुर्वेदी,** शिवना प्रकाशन, बस स्टैंड, सीहौर-४६६००१. मू. २५० रु.
**अविरल** (का. सं.): **सं. राधेश्याम उपाध्याय,** काव्य कुंज, २१२, श्याम कमल, विलेपार्ले, मुंबई-४०००५७. (निशुल्क)
**एक ख़ुशबू टहलती रही** (का. सं.): **मोनिका हठीला**, शिवना प्रकाशन, बस स्टैंड, सीहौर-४६६००१. मू. २५० रु.
**विरह के रंग** (का. सं.) : **सीमा गुप्ता,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड, सीहौर-४६६००१. मू. २५० रु
**काले पृष्ठों पर उकरे शब्द** (का. सं.) : **मोहन सपरा,** आस्था प्रकाशन, जगदंबे कॉम्प्लेक्स, फगवाड़ा गेट, जालंधर (पं). मू. २०० रु
**काइकू** (काइकू सं.) : **राजकुमार सचान होरी,** उद्योग नगर प्रकाशन, ६९५, न्यू कोट गांव, गाजियाबाद (उ. प्र.)। मू. १२५ रु
**ममोला** (महाकाव्य) : **शांती तिवारी,** के. आर. तिवारी, ८ वर्धमान कॉलोनी, जगदलपुर-४९४००१. मू. १७० रु.
**खदबदाहट** (क. सं.) : **श्याम सुंदर निगम,** १४१५, पूर्णिमा रतनलाल नगर, कानपुर-२०८०२२. मू. ४२.८५ रु.
**मेरी कविता : मेरा कानपुर** (गद्य) : **श्याम सुंदर निगम,** १४१५, पूर्णिमा रतनलाल नगर, कानपुर-२०८०२२. मू. ५१.१० रु.

# 'त्रासदी के बीच से ही विकल्प की तलाश कर रही है, आज की पीढ़ी!'

✍ विष्णुचंद्र शर्मा

*(समकालीन कविता जनता से कट चुकी है, इस बात की गूंज हिंदी रचना संसार में प्रायः सुनी जाती है. आज अनगिनत रचनाकार कविता लिख रहे हैं, लेकिन उनकी अपनी पहचान नहीं बन पा रही है. आलोचक खेमेबाजी पर उतारू है. साधारणतः पुस्तकों की नोटिस नहीं ली जा रही है. प्रकाशक 'प्रीपेड' किताबों को छापने में ज़्यादा रुचि ले रहे हैं और अच्छे रचनाकारों की पांडुलिपियां सड़ रही हैं. कुल मिलाकर हिंदी कविता आज अनगिनत प्रश्नों से घिरी हुई है. कभी कविता में छंद की वापसी को ज़रूरी बताया जा रहा है, तो कभी समकालीन कविता को पूरी तरह हाशिये पर रखने की कोशिश की जा रही है. यह सच है कि कविता में आज 'अवांछित' रचनाकारों की बाढ़ आ गयी है, जो कविता को तहस-नहस करने पर तुले हुए हैं. पत्रिकाओं में और किताबों में छपनेवाली अधिकतर कविताएं पाठक को निराश करती हैं. यदि यही हालत रहा, तो वह दिन दूर नहीं जब कविता के साथ उसकी व्याख्या भी छापने की ज़रूरत पड़ेगी. कविता से जुड़े ऐसे ही ज्वलंत प्रश्नों को लेकर हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार श्री विष्णुचंद्र शर्मा से कवि प्रकाश श्रीवास्तव ने बातचीत की.)*

**समकालीन कविता की वर्तमान दशा से आप संतुष्ट हैं?**

पहली बात तो यह है कि समकालीन कविता पर बात से पहले मैं आपसे बात करना चाहता हूं कि आप काशी की किस परंपरा से परिचित हैं- पहली तुलसीदास की है, दूसरी कबीर दास की है, तीसरी नाटककार भारतेंदु की है. चौथी कामायनी के प्रबंधकार जयशंकर प्रसाद की है. यदि आप समीपवर्ती इस परंपरा से ही परिचित नहीं हैं, तो आप गीत स्कूल के शंभूनाथ सिंह 'रसिक' या व्यंग्य की परंपरा (बेढब, बेधड़क और चोंच की परंपरा) से भी अनजान हैं. मेरी दृष्टि से काशी का आधुनिक काल त्रिलोचन की धरती से शुरू होता है. त्रिलोचन इन थोड़े से कवियों में हैं जो समकालीन हिंदी कविता के विभिन्न स्रोतों से आधुनिक कविता को नया आयाम देते हैं, लेकिन आलोचक या इतिहासकार ख़ुद भ्रम में हैं या भ्रम में रहना चाहते हैं. बच्चन सिंह के इतिहास में काशी की कोई परंपरा नहीं है. ये आधुनिक समकालीन कविता में केदारनाथ सिंह को उछालते हैं. आज की समकालीन कविता के दो स्तर हैं, एक अनुभव से सीखकर आये कवि और दूसरे पत्रकारिता की भाषा में राजनीति, सामाजिक प्रश्नों के टिप्पणीकार (कमेंट्रेटर) हैं. अनुभव की आंखों से कबीर भी कविता लिखते थे, तुलसी भी. लेकिन मुक्तिबोध अकेले कवि हैं जिन्होंने 'कामायनी' की आलोचना करते हुए प्रसाद को मध्यवर्गीय अभिरुचि का कवि कहा. आज की समकालीन कविता मध्यवर्ग की सीमाओं में दम तोड़ रही है. जो कवि समकालीन अनुभूति में मुक्तिबोध या धूमिल की तरह आत्मसमीक्षा कर रहे हैं, वे मूलतः त्रिलोचन की परंपरा की ही विकासधारा के कवि हैं.

**आज यह आरोप लगाया जाता है कि कवि जनमानस से दूर हो गया है, क्या आप इससे सहमत हैं? यदि ऐसा हुआ है, तो इसके क्या कारण हैं?**

यह आपके या आलोचकों के दिमाग की एक गढ़ी हुई चिंता है. इसी बनारस में अवधी के श्याम तिवारी थे. भोजपुरी के कौन कवि आये हैं, इसकी तलाश न आपने की, न आलोचकों ने की. ठाकुर प्रसाद सिंह अकेले कवि हैं जिन्होंने मध्यवर्ग के बाहर जाकर 'वंशी और मादल' के गीत लिखे. जनता एक सीधी सपाट रेखा नहीं है. जनता अपने जनपद से पहचानी जाती है. हिंदी के कितने जनपद हैं, इसकी तलाश राहुल जी ने की थी जिसे आज का कवि भूल चुका है.

**छंदहीनता के कारण कविता का क्या अहित हुआ है?**

आप यदि कभी गांव गये हैं, तो गांव के धुंधलके में दोहा, छप्पय, कविता या कोई भी लोकगीत आपने ज़रूर सुने होंगे. निराला ने छंदों के बंद तोड़ने की बात कही है. कुछ लोगों ने इसका ग़लत अर्थ लगाया कि

छंद न सीखकर भी हम छंद के लय के बाहर कविता की रचना कर सकते हैं. उत्तर छायावाद तक, ज़्यादातर कवि छंदों में कविताएं लिखते थे या नये-नये लोकगीतों की तलाश करते थे. आज का कवि ग़ज़ल लिखे या दोहा लिखे, उसे प्रदीप और नेपाली के गीतों की भी तमीज नहीं है. नेपाली उन थोड़े से गीतकारों में हैं जिन्होंने हिंदी क्षेत्र के हर जनपद की कोई न कोई लोकविधा पर कविता लिखी है. आज जिस तरह कवि जनता से दूर हो गया है, उसी तरह कविता से उसकी परंपरा भी छूट गयी है. निराला की एक

बायीं ओर विष्णुचंद शर्मा जी तथा दायें प्रकाश श्रीवास्तव.

पंक्ति है-'ध्वनित दिशाएं उदार' एक छंद में कई छंद जोड़कर किस तरह एक नयी उदात्त शैली विकसित की जाती है, इसे हिंदी के आलोचक और कवि भी नहीं जानते हैं. त्रिलोचन ने तुलसी और निराला को अपनी कविता का मापदंड माना है. वे रोला के अनुशासन में सानेट लिखते हैं. आज के कितने कवि हैं जो रोला, अनुष्टुप और छप्पय के अनुशासन से परिचित हैं. ऐसे व्यक्ति यदि गीत लिखेंगे, तो वह लंगड़ी कविता होगी या अख़बारों की कतरन. छंद अनुशासन मांगता है - भाषा पर, छंद पर. आज का कवि अनुशासनहीनता को ही आधुनिक प्रयोग मानता है, जबकि त्रिलोचन ने समीपवर्ती परंपरा से सीखकर यह कहा था- 'ध्वनि ग्राहक हूं मैं.' ध्वनिग्राहकता क्या है, इसे कोई काव्यज्ञाता ही बता सकता है, वह भी यदि कोई कवि सीखना चाहे, तब.

**कविता के उत्थान-पतन के लिए साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादकों की आपकी दृष्टि में क्या भूमिका है?**

निराला की कविता कभी 'सुधा', 'माधुरी' और 'हंस' के पहले पेज पर नहीं छपी. त्रिलोचन 'प्रतीक' एवं 'कल्पना' में कभी नहीं छपे. 'नयी कविता' में जो कवि छपे हैं, उनको आज की पीढ़ी शायद ही कवि माने. जगदीश गुप्त और लक्ष्मीकांत वर्मा को पढ़कर कोई कवि मुक्तिबोध के बाद की परंपरा का कवि नहीं बन सकता. यानि पत्रिका का संपादक या संस्थाएं किसी कवि को समकालीन या श्रेष्ठ कवि नहीं बनातीं. मुक्तिबोध मृत्यु तक केवल बनारस की पत्रिका 'कवि' में विशिष्ट कवि के रूप में याद किये गये थे. यह मूल्यांकन की एक कसौटी है. आपके समय में ऐसी एक-दो पत्रिकाएं हैं, जैसे 'कृति ओर', 'पहल', 'सर्वनाम' जहां देशी और विदेशी कविताओं के साथ कविता के समय पर कभी-कभी बहस की गयी है. आज ज़्यादातर पत्रकार साहित्य तथा संस्कृति से अनजान ही नहीं मूढ़ हैं. एक उदाहरण आगे दे रहा हूं- 'नवभारत टाइम्स' में शमशेर पर मेरी एक कविता स्व. कथाकार शानी ने प्रकाशित की थी. संपादक माथुर ने उनसे पूछा कि शमशेर कौन हैं. शानी ने उत्तर दिया- आप हिंदी का संपादन छोड़ दें, मैं उत्तर दे दूंगा. आज ज़्यादातर मूढ़ संपादक हैं जो कविता को हाशिये पर फेंककर, अपनी मूढ़ता को केंद्र में रखकर विज्ञापित कर रहे हैं. इसके लिए आप किसी भी दैनिक अख़बार का रविवारीय अंक देख लें.

**इसके लिए आलोचक या समीक्षक किस हद तक ज़िम्मेदार हैं?**

काशी में तीन आलोचक जाने जाते हैं. एक कविता के नये प्रतिमान के नामवर सिंह, दूसरे प्रगतिशील कविता के झाड़ झंखाड़ आलोचक चंद्रबली सिंह और तीसरे इतिहास दृष्टि से कटे हुए डॉ. बच्चन सिंह. इनमें से कौन व्यक्ति त्रिलोचन से विष्णुचंद्र शर्मा तक की कविता का सुधी पाठक भी है, यह आप खोज लें. बच्चन सिंह को 'कवि' मासिक पत्रिका की भी याद

तक नहीं है, जबकि वे इतिहासकार हैं. फिर 'कवि' के विशिष्ट कवि गजानन माधव मुक्तिबोध, केदार नाथ अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र, त्रिलोचन, शमशेर बहादुर सिंह, नलिन विलोचन शर्मा, नामवर सिंह, दुष्यंत, केदार नाथ सिंह की कविता के प्रतिमान पर 'कवि' के आलोचकों की टिप्पणियां पढ़ लें और यह समझ जायें कि भवानी प्रसाद मिश्र पर हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं. शमशेर की 'आओ' कविता पर जगत शंखधर संवाद करते हैं. केदार नाथ सिंह केदार नाथ अग्रवाल की कविता की जांच-पड़ताल करते हैं. विष्णुचंद्र शर्मा त्रिलोचन की कविता के उदात्त मूल्यों पर टिप्पणी करते हैं. प्रभाकर माचवे मलढेकर (मराठी) की कविता का आधुनिक बोध समझाते हैं. शमशेर 'नयी कविता' पर कुछ प्रश्न सामने रखकर बहस करते हैं और यह सब कुछ एक साल के 'कवि' (१९५७-५८) की उपलब्धि है. रामदरश मिश्र आज अपनी रचनावली पर बैठे हुए इतरा रहे हैं, लेकिन उन्हें पहली बार चंद्रबली सिंह ने भाषा की कसौटी पर उधेड़ कर रख दिया था. आज कितने आलोचक हैं जो धूमिल से अशोक पाठक तक की कविताएं पढ़ते हैं या प्रकाश श्रीवास्तव की नाराज़गी पर सोचते हुए आज की कविता का मूल्यांकन करते हैं. मेरे बाद की काशी केदार नाथ सिंह के लिए बंजर ज़मीन हो सकती है. मेरे लिए आधुनिक हिंदी के किसी कवि से हाथ मिलाने की शक्ति रखती है, काशी की नयी पीढ़ी. आलोचक किसी कवि को नहीं बनाते, न ही किसी पत्रिका ने किसी कवि को बनाया है. नागरी प्रचारिणी सभा ने सुधाकर पांडेय को बेचा और चढ़ाया, लेकिन सुधाकर पांडेय भी कवि हैं, इसे बनारस का कोई कवि नहीं जानता. बनारस में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को तो मैं जानता हूं लेकिन विश्वनाथ प्रसाद कविता की समझ में कितने भोथरे हैं, इसकी तलाश भी मेरे जैसे व्यक्ति को कभी नहीं रही. इसे मैं कवियों की हीनता मानता हूं कि वो परमानंद श्रीवास्तव या विश्वनाथ प्रसाद को समकालीन कविता की कसौटी के लिए याद करते हैं. मेरी दृष्टि में परमानंद अपनी आधी उम्र केदार नाथ सिंह की कविता का भाष्य लिखते रहे और बची हुई आधी उम्र नामवर सिंह का उल्था करने में गुज़र रही है. आप चाहें तो 'आलोचना' के अंक देख लें. कोई इन मूढ़ आलोचकों को पढ़कर शायद ही कवि बना हो. आप चाहें तो ज्ञानेंद्र पति से पूछ लें कि उन्हें कवि बनाने में किन आलोचकों ने सार्थक भूमिका निभायी है.

**दिन-प्रतिदिन कविता के पाठकों की संख्या घटती जा रही है, इसके लिए क्या प्रकाशक भी कहीं से ज़िम्मेदार है?**

आपके प्रश्न के दो हिस्से हैं- एक, रामविलास शर्मा ने एक बार कहा था कि हर प्रकाशक को रॉयल्टी का स्टेटमेंट देते समय यह बताना चाहिए कि वह पुस्तकें बेचता है या सरकारी गोदामों में डंप करता है. अशोक वाजपेयी, केदार नाथ सिंह, ज्ञानेंद्र पति और राजकमल मंडल के कवियों की आप पांच साल की पुस्तकों का विवरण नोट कर लें, शायद ही किसी पुस्तक का दूसरा संस्करण हुआ हो. दूसरा, प्रश्न का हिस्सा है जो कवि ख़ुद पहल करते हैं, जैसे नागार्जुन ने अपनी ज़्यादातर किताबें ख़ुद छापीं और झोले में रखकर बेची थीं. विष्णुचंद्र शर्मा ने एक रुपये मूल्य की नाजिम हिकमत की कविताओं का अनुवाद छापा था. 'हाथ' (अनु. चंद्रबली सिंह) नाम का वह संग्रह केवल गोदौलिया चौराहे पर एक शाम के अंदर तीन सौ प्रतियां मैंने बेची थीं. आपातकाल के समय मैंने 'तत्काल' की कविताएं नामवर सिंह को सुनायी ज़रूर थीं, लेकिन बनारस में छापी थीं और इंदिरा गांधी की पुलिस और सूचना अधिकारी भी प्रकाशक या कवि से एक प्रति वसूल नहीं कर सके थे और दो महीने के अंदर 'तत्काल' की एक हज़ार प्रतियां बिक गयी थीं. इसको जनता ने ही ख़रीदा था. जब मेरे पास कुल पांच प्रतियां रह गयी थीं, तब एक लड़की आयी थी, यह कहते हुए कि मैं खालसा कॉलेज में पढ़ती हूं, मुझे एक प्रति दे दें. मैंने कहा था, मैं जनता को कविता बेचता हूं, गुप्तचर विभाग के कर्मचारियों को नहीं बेचता. वह लड़की रुआंसी हो गयी थी. मैंने कहा था, तुम खालसा कॉलेज में नहीं पढ़ती हो, यह मैं जानता हूं. कवि जनता का चेहरा पहचानता है और जनता भी अपने कवि को प्यार करती है. 'तत्काल' के बाद मैंने 'जानवर तंत्र' निकाला था. उसकी भी दो हज़ार प्रतियां मैंने छापी थीं और आज मेरे पास सिर्फ़ एक प्रति है. 'जानवर तंत्र' पर पहली बार दूरदर्शन में कैलाश वाजपेयी ने नोटिस ली थी. यह उस समय की बात है, जब श्रीकांत वर्मा

'मगध' लिखने की कल्पना भी नहीं कर रहे थे. आज भी किसी आलोचक ने 'जानवर तंत्र' की कविता के व्यंग्य, विडंबना, यथार्थ, संवेदना, ऐंद्रीय बोध और सौंदर्याभिरुचि के साथ 'मगध' की कविताओं की समानांतर समीक्षा नहीं की है. इससे लगता है कि कवियों ने ही कविता को ड्राइंगरूम में दफ़ना दिया है. मैंने अभी 'अनुभव की बात कबीर कहें' नाम से अपना कविता संग्रह प्रकाशित किया था. पंद्रह रुपये मूल्य था उसका. आज उसकी एक कॉपी बची हुई है. न किसी प्रकाशक ने उसे बेचा, न ही किसी सरकारी ख़रीद में बिकी. एक हज़ार प्रतियां केवल कविता में अभिरुचि रखनेवाले पाठकों ने एम. ओ. भेजकर मुझसे मंगायी या ऑर्डर दिया. अभी २०००-२००१ का स्टेटमेंट राधाकृष्ण प्रकाशन ने 'सूरज सबका है' (विद्यासागर नौटियाल का उपन्यास) का विवरण भेजते हुए बताया कि एक प्रति भी इस उपन्यास की नहीं बिकी है. जबकि शायद ही हिंदी की किसी बड़ी पत्रिका ने उस पर विस्तृत समीक्षा न छापी हो और दिल्ली में नामवर सिंह से महेश दर्पण तक एक गोष्ठी में इस पर बेलाग समीक्षा न कर चुके हों. यह प्रकाशक का रहस्य है, जिसे प्रकाशक ही जान सकता है.

**कविता के इस ह्रास के लिए क्या मंचीय कवि और कवि सम्मेलनों के आयोजक भी ज़िम्मेदार हैं?**

'ह्रास' शब्द आपकी अपनी हीनता को बता रहा है. कविता न तो हादसे में दबती है और न ही वियतनाम, अफ़गानिस्तान की त्रासदी में कविता का ह्रास हुआ है. आप जिसे 'ह्रास' कहते हैं, वह कविता की अभिरुचि का 'ह्रास' है, कविता का ह्रास नहीं है. इसीलिए आपके 'ह्रास' को मैंने 'हादसा' कहा है. हादसा आज दो तरह से हो रहा है. एक भी कोई मंच नहीं है, जिस पर भारतीय भाषा का कवि अपनी रचना सुनाकर समीपवर्ती भाषा के कवि से संवाद कर रहा हो. कवि सम्मेलन एक समय यह कार्य कर रहा था. आज मीडिया, अख़बार और कवि सम्मेलन कविता के हादसे का नमूना बन चुके हैं. १९६० से मैं दिल्ली में रह रहा हूं. आज तक कांग्रेस से जनता और भाजपा तक की सरकारें आयीं और चली गयीं. समाजवादी सरकारों का भी हादसा मैंने देख लिया. लेकिन मैं या मेरी कविता उनकी राजनैतिक छाप या सौदेबाजी से संचालित नहीं हुई.

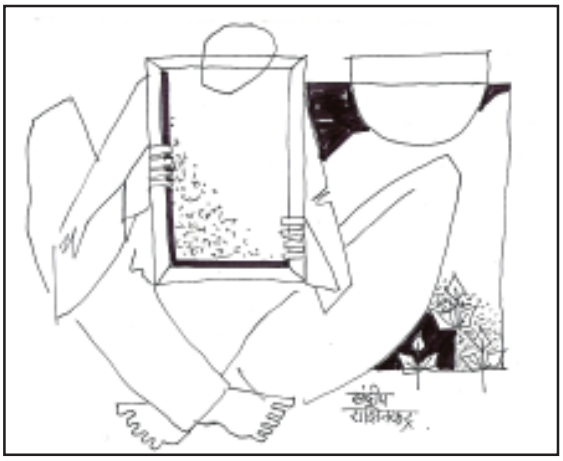

इसलिए मैं मीडिया या दैनिक अख़बारों के हाशिये का कवि नहीं हूं. दिल्ली में 'कविता हाशिये पर चली गयी' कहने वाले कवि मंगलेश डबराल, केदारनाथ सिंह, ज्ञानेंद्रपति ख़ुद कहां पहुंच गये हैं, इसकी जांच-पड़ताल चंद्रबली सिंह जैसे आलोचक ही कर सकते हैं. इसलिए मैं यह नाम ले रहा हूं कि 'तत्काल' के आवरण लेखक चंद्रबली सिंह ही थे. उन्होंने आज तक 'तत्काल' के बाद किसी कवि पर दो शब्द नहीं लिखे हैं. जबकि अशोक पाठक पिछले दो दशक से और अनिरुद्ध त्रिपाठी एक दशक से और प्रकाश श्रीवास्तव जनवादी लेखक संघ के जरिये उनके समीपवर्ती कवि हैं. इसे मीडिया की कमज़ोरी नहीं, आलोचक की कमी कही जायेगी. चंद्रबली सिंह वाल्ट ह्विटमैन, एमली डिकंसन, पाब्लो नेरुदा, बर्तोल्त ब्रेख्त, मायकोवस्की की कविताओं का अनुवाद करने में जितना समय दे चुके हैं, अगर अपने जीवन का एक दिन भी उन्होंने इन कवियों की कविता के मुहावरे, भाषा, इमेज पर बातचीत की होती, तो अनिरुद्ध त्रिपाठी को विद्यानिवास मिश्र का पैर नहीं पकड़ना पड़ता. हिंदी में एक परंपरा चरणपादुका के पूजन की रही है. नामवर सिंह की चरणपादुका का पूजन करते हुए केदारनाथ सिंह से अशोक वाजपेयी तक कौन सौदेबाजी से संचालित नहीं हुआ...! कोई कवि आलोचक ने नहीं बनाया है, न ही कोई आलोचक त्रिलोचन या विष्णुचंद्र शर्मा को मार सका है. आलोचक ख़ुद अपनी विश्वसनीयता खो चुका है. इसका ताज़ा उदाहरण 'नामवर निमित्त' जैसा आयोजन है, जिसमें नेता और पत्रकार, नौकरशाह और बुद्धिजीवी एड़ी-चोटी का पसीना बहाकर

भी शुक्ल जी के बाद रामविलास शर्मा को उनकी जगह से हिला नहीं सके. नामवर जी मूलतः आज सत्ता के प्रवक्ता हैं. चंद्रबली सिंह की चुप्पी उनके मार्क्सवाद पर प्रश्नचिन्ह लगाती है. शुक्लजी और रामविलास शर्मा अंत तक भारतीय सौंदर्याभिरुचि पर मम्मट और ध्वन्यालंकार की तरह नयी से नयी पीढ़ी पर बहस करते रहे. नामवर सिंह ने यह सवाल ज़रूर उठाया था, बच्चन सिंह की प्रतिष्ठा के अवसर पर. सवाल था कि बच्चन ने क्या किया है, जिसके लिए उनका सम्मान किया जाय. 'भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश', 'भारतीय सौंदर्य शास्त्र', 'तुलसीदास' जैसी पुस्तकों को पढ़ने के बाद आज का हर पढ़ा-लिखा हिंदीभाषी यह सवाल पूछ रहा है कि नामवर सिंह की भारतीय संस्कृति में क्या भूमिका है या रामविलास शर्मा के बाद मार्क्सवादी सौंदर्याभिरुचि में नामवर सिंह क्यों शून्य में अटके हुए नज़र आते हैं. नयी पीढ़ी इसी बनारस में आ चुकी है जो त्रिलोचन के बाद आज नहीं तो कल इन आलोचकों और पत्रकारों से उनकी ज़मीन पर उनकी ही गिरी हुई 'मूर्ति' पर सवाल करेगी. 'रंगभूमि' का सूरा बनारस का नायक था, प्रेमचंद के समय में. आज जो आलोचक नज़र आ रहे हैं, वे सूरा की मूर्ति को गिराकर ख़ुद अपनी ही मौत का आख्यान लिख रहे हैं. साहित्य या कविता मुक्तिबोध की मौत के बाद भी नहीं मरी. नागार्जुन की मौत के बाद हर कवि ने आत्मविश्लेषण करते हुए नागार्जुन के व्यंग्य, प्रसाद के छंद, जनवाद और लोकछंदों पर विचार करना शुरू कर दिया है. केदारनाथ अग्रवाल, केदारनाथ सिंह के लिए सामयिक या ताने-बाने के कवि नहीं है, पर बांदा से बनारस तक, बनारस से जयपुर तक एक भी कवि नहीं मिलेगा जो केदार की कविता एकांत में गुनगुनाता न हो. उसे शायद ही कभी अपने एकांत में केदारनाथ के 'मांझी के पुल' कविता की याद भी आती होगी. 'ताना-बाना' का अर्थ है सत्ता और बुद्धिजीवियों के बीच सुलुफ. कौन व्यक्ति अमेरिका, जर्मनी, पोलैंड और इंग्लैंड में हिंदी का सौदा कर रहा है या अपनी कविता का अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में सट्टा खेल रहा है, यह नयी पीढ़ी से छिपा नहीं है. ताने-बाने के बल पर ही अटल बिहारी वाजपेयी सबसे चर्चित कवि हैं. सत्ता के गलियारे में अंतर्राष्ट्रीय कविता यूरोप और अमेरिका में मर चुकी है. अशोक वाजपेयी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय में उसकी लाश ढो रहे हैं. उनकी कविता के संसार में नाजिम हिकमत, पाब्लो नेरुदा, बर्तोल्त ब्रेख्त और त्रिलोचन का नाम खोजने पर भी नहीं मिलेगा. वे कविता के अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में केवल अपना, केदारनाथ सिंह और कुंवर नारायण का सट्टा खेल रहे हैं. अभी-अभी अमेरिका के सट्टा बाज़ार को चंद खिलाड़ियों ने धराशायी कर दिया है. वह दिन दूर नहीं, जब ताना-बाना का यह सट्टा बाज़ार हिंदी क्षेत्र में भी मुंह के बल गिरेगा. अवधी, मगही, ब्रज, भोजपुरी, मैथिल के कवि आज भी सजग और अंतर्राष्ट्रीय समझ के कवि हैं. वे भिखारी ठाकुर और शमशेर की जनवादी समझ का अगला कदम हैं. नया कवि राजेश जोशी से लेकर अशोक पाठक तक जनता के बीच ही अपनी कविता की ज़मीन तलाश रहा है. अनिरुद्ध त्रिपाठी भी जब विद्यानिवास मिश्र का पुतला जला देंगे, तो उनमें सचमुच अपने कवि पर आत्मविश्वास पैदा हो जायेगा. मैं मानता हूं कि आज की पीढ़ी त्रासदी के बीच से ही विकल्प की तलाश कर रही है और विशाल हिंदी क्षेत्र देर-सबेर जनता के बीच ही कविता की खोज या पहचान करेगा.

**इस संदर्भ में साहित्यिक संस्थाओं की भूमिका क्या संतोषजनक है?**

आज हिंदी की एक भी संस्था नहीं है. भारतीय साहित्य परिषद से लेकर केंद्रीय साहित्य अकादमी तक जो संस्थाएं चर्चा में हैं, वे सेठों के काले बाज़ार या सरकार के अनुशासन या अनुदान पर चल रही हैं. साहित्य अकादमी रामविलास शर्मा के भाषण के बाद प्रबुद्ध बुद्धिजीवी के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी को बुलाती है, यह सत्ता की गुलामी का उदाहरण है. हिंदी क्षेत्र इतना विशाल है कि उसकी कोई भी केंद्रीय राजधानी नहीं है. कभी मध्य प्रदेश में साहित्य और संस्कृति का तमाशा किया जाता है, कभी उत्तर प्रदेश में पुरस्कार के रूप में अपने चहेतुओं को रेवड़ी बांटी जाती है. इसकी वजह यह है कि छोटे पुरस्कार से लेकर बड़े पुरस्कार तक इसके संयोजक साहित्य की मूल चेतना के ही विरोधी हैं. किसी एक पुरस्कार समिति में किसी एक सत्ता विरोधी या सेठ विरोधी बुद्धिजीवी को कभी आमंत्रित नहीं किया गया. साहू शांति प्रसाद जैन ने इन्कम टैक्स की जो चोरी की थी, उससे बचने के लिए

वह भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार देता है. संपूर्णानंद ने पहल कर पहला भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार काजी नजरुल इस्लाम को देने की सिफारिश की थी, लेकिन विद्रोही कविता से सेठों का क्या संबंध! आज भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार को मैं काले धन का पुरस्कार कहता हूं और जब सुमित्रा नंदन पंत को पुरस्कार मिला था, तो मैंने कुछ प्रबुद्ध लेखकों के साथ इसके विरोध का एक अभियान शुरू किया था. उस समय मेरे साथ रमेश गौड़, मंगलेश डबराल, त्रिनेत्र जोशी जैसे कवियों ने यह निश्चय किया था कि हम हाथ में पोस्टर लेकर विज्ञान भवन में इस काले धन के पुरस्कार का विरोध करेंगे, पर तीन पोस्टर लेकर मैं अकेले विज्ञान भवन के मुख्य दरवाज़े पर खड़ा था और कभी मुझे देखकर प्रभाकर माचवे रुक जाते थे और कभी गिरिजा कुमार माथुर. एक पोस्टर पर उनकी नज़र पड़ी थी- पंत शर्म-शर्म...! आज काले धन में डूबे कवियों के पास शर्म भी नहीं है. वे बड़े पद पर बैठे हैं और काले धन का ही साहित्य में व्यापार कर रहे हैं. रघुवीर सहाय, मनोहर श्याम जोशी इसी शर्मनाक काली व्यवस्था के कारण 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' और 'दिनमान' से निकाले गये थे. यह संस्थाओं का खोखला चरित्र है.

**आख़िर क्या कारण है कि बड़े पैमाने पर कवियों के सक्रिय होने के बावजूद रचनाकारों की स्पष्ट अलग पहचान नहीं बन पा रही है?**

इस प्रश्न के दो हिस्से हैं- एक, आप कवि की सक्रियता को उसकी रचना में देखते हैं या उसके व्यक्तित्व में. हर बड़ा कवि कहा जानेवाला चर्चित कवि किसी न किसी सेठ का या बहुराष्ट्रीय कंपनियों का होशियार बिका हुआ बुद्धिजीवी है. उसकी होशियारी उसे जनता या अपनी ही प्रेस के यूनियन से जुड़ने नहीं देती है. दिल्ली में एक समय हड़ताल के जुलूस में कवि शरीक होते थे. आज वे ही कवि होशियारी से अपनी-अपनी नौकरी को बचाने में लगे हुए हैं. इसलिए उनकी सक्रियता उनकी कविता में खोजने पर आपको निराशा नज़र आयेगी. इसका ताज़ा उदाहरण हैं मंगलेश डबराल, लीलाधर जगूड़ी, आलोक धन्वा की कविता में कौन-सी सक्रिय जनता आपको नज़र आती है....! जबकि नागार्जुन की कविता सक्रिय जनता का इतिहास बता सकती है. वह आज़ादी के बाद की जनवादी कविता का

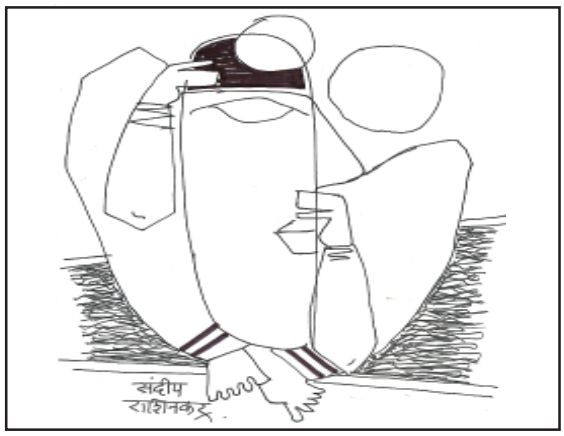


दस्तावेज़ है. दूसरा पक्ष है, कवि की सक्रिय भूमिका का. मैंने अपना उदाहरण आपको दिया, 'तत्काल', 'जानवर तंत्र' की कविताएं मैंने जब भी कभी इंदौर, भोपाल या गांव के किसी भी हिस्से में सुनाई हैं, तो जनता ने ही उस पर मेरी पीठ थपथपायी है. रचनाकार और जनता एक-दूसरे के पूरक होते हैं. यदि आप रचनाकार हैं, तो आप बनारस की जनता से कटकर बनारस की कविता नहीं लिख सकते. आपकी कविता में बनारस के किस तबके का चरित्र आया है, यह आप अपने-अपने जनपद के अंदर खोज सकते हैं. त्रिलोचन अपने जनपद के कवि हैं, केदारनाथ अग्रवाल अपने जनपद के कवि थे, मुक्तिबोध आज की पक्षधर जनता के सूत्रधार कवि हैं. जब भी जनता जुल्म में शरीक होती है, तो उसे नारे, पोस्टर के लिए अपने ही कवि धूमिल, मुक्तिबोध, गोरख पांडेय, नागार्जुन की ही पंक्तियां याद आती हैं. यह है जनता की अपनी सक्रिय भूमिका, जहां कविता उसके आलोचक की भूमिका पूरी करती है. आज से भी अगर आप सावधानी से अपनी ही कविता के दायरे की छानबीन करना शुरू करें, तो आपकी कविता में जो पीड़ा, करुणा, आक्रोश, असंतोष का भाव नज़र आता है, वह जनता के ही दुःख, असंतोष और पीड़ा का अर्द्धकथानक.

**ई-११ सादतपुर, दिल्ली ११००९४**
**मो. ९८१०४८१४३३**

**प्रकाश श्रीवास्तव**
**ए-३६/२६ क-३, कोनिया सट्टी रोड,**
**भदऊं, वाराणसी-२२१००१.**
**मो. ८००९७९०४६३**

**बाइस्कोप**

# मेरे गुरू- डॉ. धर्मवीर भारती

✍ सविता बजाज

*(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं. अगले अंकों में पढ़िए बी. आर. इशारा, इम्तेयाज़ हुसैन आदि के बारे में.)*

हर एक कलाकार के जीवन में एक ऐसा दौर आता है कि वह चाहे तो अपनी मेहनत से अपनी झोली में आसमां से सितारे तोड़ लाये. जीवन के हर पल को जिये, कैश करे. ख़ुशियां पाये और बांटे, शौहरत कदम चूमे. पाठकों! अपने पत्रकारिता के जीवन की बात कर रही हूं कि मैं इस क्षेत्र से कैसे जुड़ी? यूं तो बचपन से लेखन शुरू हुआ, कभी 'लोट-पोट' में छपी तो कभी दिल्ली के 'नवभारत टाइम्स' में. पैसा भी मिला लेकिन सही मायने में डॉ. धर्मवीर भारती 'धर्मयुग' के संपादक, बहुआयामी प्रतिभा के धनी और इंसानियत के पुतले से शुरू होकर 'धर्मयुग' की मौत और भारती जी के इस संसार को छोड़ने तक यह सिलसिला ख़त्म हुआ. भारती जी के निधन के बाद मैं भी करीब-करीब टूट सी गयी थी, लिखने को जी ही नहीं चाहा. सही मायने में भारती जी लेखन के क्षेत्र में मेरे गुरू थे, ठीक अब्राहीम अल्काज़ी जी की तरह जिन्हें मैं अभिनय में अपना गुरू मानती हूं.

भारती जी के धर्मयुग से जुड़ने का जुगाड़ तो तभी से शुरू हो गया था जब धर्मयुग के एक फ़ोटोग्राफर ने धर्मयुग में मेरे ढेरों चित्र छापे. उन दिनों मैं एन.एस.डी. में थी. मेरे तार डॉ. धर्मवीर भारती से जुड़ गये भले से किंतु मेरा लेखन फ़िल्म निशांत से शुरू हुआ. यूं तो 'उसकी रोटी' और 'आनंद' फ़िल्मों से बंबई की हवा लग चुकी थी और वहां का पानी भी पी चुकी थी लेकिन सही मायने में मेरा लेखन 'धर्मयुग' से ही शुरू हुआ और माध्यम बने रवींद्र श्रीवास्तव. मेरे लेख धड़ाधड़ धर्मयुग में छपने लगे, चर्चा हुई, नाम हुआ, पैसे मिले. यकीन नहीं हुआ मैं, भारती जी के करीब कैसे पहुंचती गयी. कभी फ़ोन करवाते और मिलने को कहते. लेखन के गुर समझाते और अच्छे लेखन के लिए प्रेरणा देते. मैं बहुत जल्द आगे बढ़ रही थी. कई साथी जलन के मारे मरे जा रहे थे

क्योंकि एक महिला ने बहुत कम समय में 'धर्मयुग' में वह मुकाम हासिल कर लिया था जो वे बरसों न कर सके. मेरे अभिनय के तार लेखन से जुड़ने लगे और 'धर्मयुग' की बदौलत हिंदुस्तान की हर पत्रिका से जुड़ती गयी. इस सबका श्रेय सिर्फ़ और सिर्फ़ डॉ. धर्मवीर भारती जी को जाता है.

बात निकली तो दूर तलक जायेगी. नामी गिरामी फ़िल्म वाले मेरे आगे-पीछे मंडराने लगे. मेरे नजदीक आने की कोशिश करते. जो लोग कभी घास नहीं डालते थे, वे मेरी दोस्ती चाहते ताकि मैं उनके बारे में 'धर्मयुग' में लिखूं.

पाठकों, आपको एक खरा सच्चा वाकिया सुनाती हूं कि औरत अपने मतलब के लिए क्या-क्या नुस्खे अपनाती हैं.

एक महिला उन दिनों दूरदर्शन के लिए सीरियल बनाती थी. उसकी तूती दूरदर्शन में ख़ूब बजती थी. उस ज़माने में आजकल की तरह टी.वी. पर चैनलों का राज नहीं था. महिला ने अपने मतलब के लिए मुझे मोहरा बनाया. महिला ने नैपियनसी रोड पर अपने आलीशान घर पर बुलाया और बहुत सारी स्क्रिप्टस मेरे सामने रखकर बोली- इन्हें दूरदर्शन के लिए बना रही हूं. जो रोल पसंद हो चुन लो. एक कीमती पेन

भेंट करते बोली. लेकिन एक शर्त है, आपको 'धर्मयुग' में मेरे बारे में लिखना होगा. मैं हैरान, परेशान यह तो दुकान चला रही है 'गिव एडं टेक' की, जैसे फ़िल्मवाले चलाते हैं. ठीक है मैं बोली भारती जी से बात करूंगी. भारती जी उस महिला को 'धर्मयुग' में नहीं छापना चाहते थे. हालांकि वह पहले भी जी तोड़ मेहनत कर चुकी थी, छपने के लिए. भारती जी ने मुझे ऐसे स्वार्थी लोगों से बचने की सलाह दी और कोई गिफ़्ट लेने से भी मना किया. महिला को पेन तो लौटा ही दिया और कसम भी खायी कि भारती जी के कहे अनुसार ही काम करूंगी.

भारती जी के धर्मयुग में छपने के बाद कई महिलाएं उन्हें अपना भाई, बंधु, दोस्त और मार्गदर्शक मानती थीं और वे महिलाएं आज तक धर्मयुग की बदौलत नाम और धन कमा रही हैं क्योंकि धर्मयुग उस समय की इकलौती ऐसी पत्रिका थी जो बेमिसाल थी. साहित्य से भरपूर भारती जी के रहते सात समंदर पार भी बड़े चाव से पढ़ी जाती. मैं जब फ़िल्म अंकुर, मैना, कबूतर के लिए मौरीशस गयी तो मैं यह जानकर हैरान रह गयी कि वहां के लोग सविता बजाज को ख़ूब जानते हैं, एक लेखिका के रूप में ऐक्ट्रेस के रूप में नहीं.

वक़्त ने पलटा खाया. कहते हैं न ज़्यादा अच्छापन, ज़्यादा अच्छा नाम, इंसानियत कभी-कभी इंसान को बहुत महंगी पड़ती है. बस, भारती जी के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ. उनके धर्मयुग को तो बुरी नज़र लग ही गयी थी. उन्हें भी बुरी नज़र ने अपने चंगुल में लपेट लिया. शायद उस स्वर्णयुग का अंत होने वाला था. जहां मैंने अपार नाम, यश और मेरे गुरू भारती जी का स्नेह पाया था. मैं उन दिनों फ़िल्मों में ज़्यादा बिजी थी, आये दिन आउटडोर जाना पड़ता. सुना भारती जी बीमार रहते हैं, बॉम्बे अस्पताल में भरती हैं. फिर याद आया, कितनी बार कहती थी- भारती जी तेज़ तंबाकू का पान मत खाइए, जीते जी तो आप हंसते थे. भारती जी से न तो मिलना संभव हुआ और न ही उनके अंतिम दर्शन नसीब हुए. इसे भाग्य विधाता का खेल समझ रो-धोकर चुप होकर बैठ गयी.

कहते हैं जानेवाले कभी नहीं आते, जानेवाले, की याद सताती है. मुझसे लोग अक्सर कहते हैं, भारती जी अमर हो गये, और मैं सोचती हूं मुझे तो जीते जी इंसान का अपनापन चाहिए, उसका स्नेह चाहिए, मार्ग-दर्शन चाहिए बाकी तो बातें ही बातें हैं. कभी-कभी इस ढलती उम्र में लिखते-लिखते क़लम रुक सी जाती है और भारती जी की याद आती है- भारती जी मुझे तो आपने पाठकों तक पहुंचा दिया. धर्मयुग के माध्यम से मौरीशस तक पहुंच गयी मैं और आप ख़ुद धर्मयुग को ही छोड़ कर चल दिये. कभी मुड़ कर भी न देखा. तभी तो धर्मयुग आपके बाद जीते जी मर गया, समय से पहले बेमौत मर गया. कोई कुछ भी कहे- डॉ. धर्मवीर भारती जिसने 'अंधायुग' को किसी को छूने न दिया, अपने जन्मदाता के बिना बेचारा 'धर्मयुग' क्या करता.

**द्वारा श्री साईनाथ एस्टेट, डी-३, बी-२,**
**सह्याद्री नगर, चारकोप, मुंबई-४०० ०६७**
**फोन : ९२२३२०६३५६**

**लघुकथा**

# अंतरात्मा

**अशफाक 'कादरी'**

अख़बार में ख़बर 'नौकर पांच लाख रुपये लेकर फरार....' पढ़कर सेठजी का मुंह कड़वाहट से भर गया. अख़बार पटक कर वे बड़ड़ाने लगे कि इन नौकरों पर भरोसा नहीं करना चाहिए. जरा मौका मिलते ही रुपये लेकर चंपत हो जाते हैं.

.... सेठजी के वचन सुनकर दुकान के नौकर हरिया का मस्तिष्क कौंध गया. एक नौकर की करतूत से सारा नौकर वर्ग बदनाम हो रहा है. हरिया ने भी आज दुकान से तांबे का लोटा चुरा कर थैले में रख लिया था. उसके मन में अंतर्द्वंद छिड़ गया कि उसकी चोरी का पता लगने पर सेठजी का नौकरों के प्रति रहा सहा भरोसा उठ जायेगा और यहां कोई नौकर चैन से नहीं रह सकेगा. सेठजी की आंख बचाकर उसने कोने में थैले से वह लोटा निकाला और यथा स्थान रख दिया. उसके मन से बोझ उतर गया और वह उन्मुक्त मन से काम में लग गया.

**मोहल्ला चूनगरान, बीकानेर-३३४००५**

## पुस्तक-समीक्षा

# एक ख़ूबसूरत अहसास

✍ डॉ. हरिनारायण चौरसिया

**तेरी याद में....** (ग़ज़ल संग्रह) : **रचना एहसान**
**प्रकाशक :** वैभव प्रकाशन, अमीनपारा चौक, पुरानी बस्ती, रायपुर (छ. ग.) **मू.** ७५/- रु.

ग़ज़ल संग्रह 'तेरी याद में', श्रीमती रचना एहसान द्वारा रचित एक ख़ूबसूरत कृति है. अपने रख-रखाव में यह उत्कृष्टता का उदाहरण प्रस्तुत करती है. संग्रह में शेरों के साथ शायर की अंतरंगता इसकी विशेषता है. यही इस संग्रह की कामयाबी भी है. भाषा के विषय में यह बात पूरी विश्वसनीयता से कह सकते हैं कि उन्होंने आम-बोलचाल के मुहावरों और देशज शब्दों का भी प्रयोग किया है. ग़ज़लें पाठकों से सीधा संवाद बनाती हैं.

एक सौ बत्तीस पृष्ठों का यह संग्रह विगत कुछ वर्षों में प्रकाशित ग़ज़ल संग्रहों की श्रृंखला में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में सफल हो सकेगा. प्रस्तुत संग्रह में रचना के स्नेहीजनों ने अपने कथ्य और मनोगत से उनका हौसला बढ़ाया है. इस बात का उल्लेख यहां होना आवश्यक है. जहां आज संग्रहों के लिए बड़े-बड़े नामों से लिखवाने का एक फ़ैशन सा हो गया है. वहां रचना ने अपने आस-पास के परिवेश में ख़ुद को तलाशने का एक अच्छा प्रयास किया है. जबलपुर के स्थापित शायर अब्दुल हई अंजुम कहते हैं, 'एक जुनून का नाम है रचना एहसान', वास्तव में यह एक जुनून का ही काम है. इसके बिना, ग़ज़ल का एक शेर कहना संभव नहीं है. इसी आलेख की अंतिम पंक्तियों में वे एक सच्चाई के दर्शन करा गये, 'उसकी शायरी उसके दिल की किताब है.' इसी श्रृंखला में खलीकुज्जमा जमा सहर का कथन, 'उनका वस्फ यही है कि सच्ची-सच्ची बातों को सादगी से अदा कर देती है.' 'जो ख़ुद भी होता है अच्छा जहान में रचना/उसे हर आदमी अच्छा दिखाई देता है.' इस तरह शेरों में दिल की बातों को साफ़-साफ़ और सरल शब्दों के माध्यम से कह देना, यह उनकी सदाशयता, सहृदयता के साथ ही उनके रियाज को बताता है.

एक नारी में पुरुष से ज़्यादा आंतरिक पक्ष होते हैं. वह मां है, बहिन है, बेटी है, पत्नी है, महबूबा भी है. कभी वह मां बनकर विशाल वृक्ष की छाया बन जाती है तो कभी वह नन्हीं चिड़िया सी बेटी बन जाती है. कभी वह भाई के हित में त्याग की मूर्ति प्यारी बहना है तो, कभी वह पत्नी के रूप में प्रेरणा और अभिभावक की मिलीजुली प्रतिकृति हो जाती है. एक साथ कई मोर्चों पर वह जूझती नज़र आती है. नारी आज असहाय या निरीह नहीं है. रचना अपने शेर के माध्यम से पुरुष से कांधा से कांधा मिलाकर उसकी सहयोगी बनने को तैयार यह कहती नज़र आती हैं-

*तुझको तूफान की मौजों में भी सोचा हमने,*
*हम तेरी कश्ती का पतवार भी हो सकते हैं।*

इसी तरह उनका आत्मविश्वास और संकल्प की मजबूती इस शेर में पूरी तरह उभरकर आती है-

*सूरज को धरती पर लाने वाली हूं,*
*ख़ुशियों के मैं दीप जलाने वाली हूं।*
*रो-रोकर रातों को दुआएं करती हूं,*
*सोये हैं जो उनको जगाने वाली हूं।*

इस शेर में छिपा संदेश रचनाकार की परिपक्व मानसिकता का परिचय कराता है. किसी ने सच ही कहा है, किसी को शक्तिशाली बनाने से अच्छा है उसकी शक्ति का आभास उसे करा दो.

रचना एहसान केवल प्रकाशन तक ही सीमित नहीं रही हैं. वे मुशायरों में भी सफलता के साथ सहभागी रही हैं. इस अनुभव ने उनकी अभिव्यक्ति को ठोसपन दिया है. इन मंचों ने उनमें आत्मविश्वास की ऊर्जा का संचार किया. उन्हें अपने फन को मांझने का अवसर दिया है. उनके भावबोध में जहां संघर्ष और जिजीविषा दिखलाई पड़ती है, वहीं वे सुलभ कोमलता के साथ अपने शेरों में विनम्र भी हैं. इसीलिए 'सलीम अख़्तर' ने उनके लिए 'कोमल सौंदर्य की अभिव्यक्ति का स्वर' जैसे विशेषण का प्रयोग किया है. यहां कुछ शेर इस भाव की पुष्टि लिए संदर्भ रूप में

प्रस्तुत हैं.

*उम्र गुज़री खटक नहीं मिटती,*
*कैसा कांटा चुभो गया कोई।*
*याद आता है तो बस रुह महक जाती है,*
*वो तेरा ख़त में मुझे दिल बरे जानी लिखना।*
*आंसू जो तुमने पोंछे तो भर आया और दिल,*
*सैलाब जैसे आ गया अंगनाईयों के बीच।*

ऐसे कितने ही शेर इस संग्रह से लिये जा सकते हैं जो उनके दिल और अहसास की नाज़ुकता को दर्शाते हैं. खटक जैसे ठेठ देशज शब्द का प्रयोग उन्हें भाषाविद् और पांडित्य जैसे ओढ़े हुए दंभ से दूर रखता है. बोल-चाल की भाषा और बोलियों जैसी शब्दावली का प्रयोग करके वे जन साधारण के ज़्यादा नजदीक हो जाती हैं.

संपूर्ण संग्रह में भिन्न-भिन्न रंगों का समन्वय है. जैसे भावों और विषयों का शेडकार्ड हो. इसमें ग़ज़ल के मूल तत्व हैं तो राष्ट्रीयता के गौरव और सम्मान की अभिव्यक्ति भी है. समाज की विसंगतियां हैं, तो व्यक्ति चरित्र की कमजोरियां भी हैं. रचनाकार ने हर जगह एक सर्जन की तरह ध्यान रखा है. यह संग्रह रूप-रंग-आकार में ही नहीं, अपितु अपने आचार-विचार और अभिव्यक्ति में भी सक्षम है. उनकी कुछ ग़ज़लों को बालगीत के खंड में भी रखा जा सकता है. इन ग़ज़लों में उनका मातृत्व वाला रूप निखरकर आता है. यह पद्य विधा का सबसे कठिन विभाग माना जाता है. बच्चों के लिए रचना करना सहज नहीं होता. परंतु रचना ने इसमें भी सफलता से प्रयोग किये हैं. यहां कुछ शेर इसी भाव और समर्पण के प्रस्तुत हैं-

*बज्जी जल्दी लाना मम्मी,*
*चिज्जू मीठी लाना मम्मी।*
*पज्जी झबला दोने दो,*
*नल बहता हो तो बहने दो।*

या फिर उनका ममता से बेकल हो कह उठना- 'हर तरफ दौड़ती ही जाती है/ मुझको दिन भर बहुत सताती है/ खेलते-खेलते वो आंगन में / मेरा पीहर मुझे भुलाती है.'

यहां उन शेरों का उल्लेख करना भी आवश्यक है जिसमें उन्होंने तीज-त्योहारों को और विशेष शीर्षकों को अपनी ग़ज़लों का विषय बनाकर, नजीर अकबरबादी की परंपरा का निर्वाह किया है-

*भाई बहनों का प्यार है राखी,*
*मौसमें ख़ुशगवार है राखी।*
*बदला मिज़ाज प्यार की बोली नहीं रही,*
*ये क्या हुआ पहली सी होली नहीं रही।*
*आंगन के अंधेरों को मिटाती है दीवाली,*
*बिछड़े हुए लोगों को मिलाती है दीवाली।*

या फिर प्रकृति और उसके मौसमों के लिए कहती हैं:-

*मस्ती लुटा रहा है बरसात का मौसम,*
*दिल को लुभा रहा है बरसात का मौसम।*
*फूल बूटे खिला गयी बरखा,*
*धरती दुल्हन बना गयी बरखा।*

उन्होंने चांद, अख़बार, आदमी, औरत जैसे अनेक व्यक्ति वाचक संबोधनों को अपनी ग़ज़ल में रदिफ के तौर पर प्रयोग किया है. और सुंदर ग़ज़ल की रचना की है-

*घर बैठे ज़माने की ख़बर लाता है अख़बार,*
*हर मुल्क की तसवीर दिखा जाता है अख़बार।*
या,
*ज़िंदगी में इस कदर तनवीर फैलाता है चांद,*
*शाम होते ही मेरे नज़दीक आ जाता है चांद।*
या,
*किस क़दर दीवानगी में मुब्तिला है आदमी,*
*आदमी के ख़ून का प्यासा हुआ है आदमी।*

अपनी ग़ज़लों से वह राष्ट्रीय गौरव और सम्मान के साथ दूषित होते हुए वैश्विक पर्यावरण की बात भी करती हैं.

*देश को ऊंचा उठाना चाहिए,*
*शाने हिंदुस्तां बढ़ाना चाहिए।*
या फिर,
*चारों तरफ विनाश के बादल जो छाये हैं,*
*पर्यावरण के नाम पर यमदूत आये हैं।*

रचना एहसान ने विविध विषयों को अपनी ग़ज़लों में रखा है तो उन विषयों का रदिफ़ के रूप में सफल प्रयोग भी किया है. यह बात उनकी ग़ज़लों की समझ को दर्शाती है.

यह वास्तविकता है कि कोई भी कृति निर्दोष नहीं होती उसमें कहीं कुछ शेष रह जाता है. कहीं कुछ त्रुटि भी रह जाती है. यह संग्रह इसका अपवाद नहीं

है. किंतु रचनाकार और रचना के उद्देश्य में मानवीयता के लिए आग्रह हो, ईमानदारी हो तो, पाठक को अपनी उदारता का परिचय देते हुए रचनाकार का हौसला बढ़ाना चाहिए. जिससे भविष्य में और भी परिपक्वता के साथ वह आगामी कृतियों को प्रस्तुत कर सके.

**अंसारी वार्ड, गोंदिया-४४१६०१**

# जीवन-जगत के स्वरों से जोड़ती ग़ज़लें

**डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया**

**सुरबहार** (ग़.संग्रह) : **ऋषिवंश**
**प्रकाशक** : नमन प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. **मूल्य** : १५० रु.

'ऋषिवंश' के दो ग़ज़ल संग्रह 'ख़ुशबू' और 'गुलदस्ता' मैं पूर्व में देख चुका हूं. उनकी भाषा-शैली और प्रयोगों की तेज़ धार से परिचित हूं. दुनिया को खुली आंखों से देखना, हृदय की गहराई से अनुभव करना और फिर ऐसी शब्दावली में व्यक्त करना ताकि पाठक या श्रोता की अंतःचेतना न केवल आंदोलित या विचलित हो अपितु भावना के साथ एकाकार होकर सोचने के लिए विवश करना यह सक्षम और सफल लेखक की पहचान है. यह ख़ूबी 'ऋषिवंश' के पूर्व संग्रहों में भली प्रकार देखी जा सकती है. वहां कई जगह वे 'ऋषिवंश' की जगह 'अग्निवंश' भी हो जाते हैं.

एक विशेष बात ऋषिवंश की यह भी है कि वे गद्य और पद्य दोनों में अपनी बात उतनी ही ताकत के साथ बख़ूबी कर सकते हैं. उपन्यास, गीत आदि के प्रकाशित ग्रंथों से यह स्पष्ट है. एक कविता संग्रह, दो गीत संग्रह, दो उपन्यास और दो ग़ज़ल संग्रहों के बाद 'सुरबहार' उनकी हिंदी ग़ज़लों का तीसरा संग्रह है. श्री ऋषिवंश ने अपने इन हिंदी ग़ज़ल संग्रहों के साथ एक शब्द विशेष रूप से जोड़ा है और वह है 'नयी'. वे इन्हें 'नयी हिंदी ग़ज़लें' कहते हैं. ग़ज़ल अब किसी एक भाषा के दायरे में बंधकर रहनेवाली विधा नहीं है. एक ज़माना था जब ग़ज़ल का नाम लेते ही 'उर्दू', 'फारसी' सहसा सामने आ जाती थीं. हिंदी में भी ग़ज़लों की परंपरा काफ़ी पहले से शुरू हो गयी थी. इधर के शोधकर्ताओं ने तो कई नाम ढूंढ़ निकाले हैं. दुष्यंत कुमार ने तो मानो हिंदी ग़ज़लों का राजमार्ग ही बना दिया. इधर तो हिंदी ग़ज़लों की भरमार है. दोहा, छंद की वापसी और ग़ज़लों का पर्याप्त लेखन दो नयी उपलब्धियां हैं. हर रचनाकार अपनी बात अपने ढंग से कहता है. जिस रचनाकार में नये-नये बिंब-प्रतीक, शब्दावली के सटीक पैने प्रयोग, कहने की नवीनता, देखने, प्रस्तुत करने की नयी दृष्टि होगी, वही नयापन ला सकता है. हालत तो यह है कि अधिकांश विषय पुराने ही हैं जिन पर शताब्दियों से लिखा जा रहा है, फिर भी युगानुरूप नयापन उसे बासी नहीं होने देता. अन्यथा दुख-सुख, आक्रोश, वेदना, सहानुभूति से बाहर कुछ नहीं है. नयी पकड़ और नयी कहन ही नवीनता के साथ प्रतिष्ठित होती है. ऋषिवंश में नये कहन की क्षमता है जो उनकी ग़ज़लों को औरों से अलग पहचान देती है. भाषा-शैली, मौलिक भाव संवेदना और चिंतन यही 'नये' के आधार हैं.

'सुरबहार' में कुल १०० ग़ज़लें हैं. इस 'सुरबहार' के स्वर पिछले संग्रहों से कुछ बदले हुए लगते हैं. इनमें पहले जैसा बाहरी प्रहार कम, भीतरी चिंतन अधिक है. जीवन-जगत के दुख-सुख, हर्ष-विषाद, मानवता के प्रति लगाव, अमानवीयता के प्रति आक्रोश, वर्तमान में व्याप्त आचरण व वातावरण के प्रति असंतोष तो है ही और उन्हें सामने लाने की भरपूर चेष्ठा भी है, पर इनमें 'सर्वे भवंतु सुखिनः' की कल्याण भावना बार-बार मिलती है. यों प्रत्येक संवेदनशील कवि कलाकार का उद्देश्य सत्य का दिग्दर्शन कराकर शुभ और शिवत्व की ओर प्रेरित करना होता है. यही रचना का चरम लक्ष्य और सार्थकता है.

अनेक ग़ज़लों में कवि ने रोटी की बात की है. आज देश की अधिकांश जनता रोटी की समस्या से जूझ रही है. सियासत, शोषण और भ्रष्टाचार ने देश की ऐसी दुर्गति की है कि तमाम साधनहीन ग़रीब पेट भरने के लिए रोटी की तलाश में कई बार भूखे पेट जीने को विवश हैं और उन्हें अपनी इज़्ज़त तक बेचनी पड़ रही है. विषमता की खाई दिनोंदिन बढ़ती जा रही है. 'रोटी' शीर्षक ग़ज़ल में कवि ने कटु सत्य को उजागर किया है और यही बात अन्य कई ग़ज़लों में

कही हैं-

*साथ खौराये कुत्तों के आदमी के कई बच्चे,*
*टूट पड़ते थे जूठन पर, खुदा की आंख भर आयी।*
*थक चुके हैं सिलसिले अब ज़िंदगी के,*
*राख में रोटी पकाना नहीं मुमकिन।*
*हुस्न की एवज में मिलती रोटियां,*
*लड़कियां आयी हुई थीं हाट पर।*
*वहां बाज़ार उम्दा थे, चमचमाती हुई सड़कें,*
*कुतुबमीनार के पीछे लड़कियां धंधा कर आयीं।*
*रोटी के लिए क्या क्या गुज़रा ज़मीन पर,*
*भरपूर आरजू के डगमग यकीन पर।*
*दिन रात दौड़ते हैं रोटी के लिए बूढ़े,*
*बच्चों ने अपना हिस्सा कुत्तों को जा खिलाया।*

इस दुखियारी दुनिया पर मौज करनेवाली सत्ता और सियासत पूरी तरह अंधी और बहरी तथा मक्कार है. सब्जबाग दिखाकर ग़रीबों का ख़ून चूसनेवाले पूरी तरह संवेदनशून्य हैं. मानवता की हत्या बेरहमी से की जा रही है. ऐसे में भला ऋषिवंश जैसे कवि-ग़ज़लकार मौन कैसे रह सकते हैं. वह पाखंडी मुखौटों को पूरी ताकत से उघाड़ने में जुटा है-

*निराली अदा का मालिक है, उसकी जेब में दुनिया,*
*ग़रीबों का लहू भी मुफ्त ही वह पिया करता है।*
*ग़लत धंधों का मालिक है, सियासत उसकी चेली है,*
*छटे नेताओं की मक्कारियां वह जिया करता है।*

इन सबके साथ ही कई ग़ज़लों में शृंगार, सौंदर्य, प्रकृति, संयोग-वियोग की भावनाएं भी व्यक्त की गयी हैं. कैसी भी स्थिति हो, कवि मन एकांत में अपनी दुनिया में विहार करता है और तब इस प्रकार की तमाम भावनाएं शब्दों में व्यक्त होती हैं. 'जादूगरनी रात' में मन की ग़ज़ब व्यथा मनोवेदना के चित्र हैं-

*रात नहीं सो पाये, तारे दर्द भरे रोने से,*
*बही पीर की नदी, विरह के तीर चुभोने से।*
*हौले हौले चीर गयी दिल कमसिन सूरत कोई,*
*ज़हर बुझा सारा आलम, उसके ना होने से।*
*दिल टूटा आहें फूटीं, निकला मौसम मायावी,*
*जादूगरनी रात बुदबुदाये काले टोने से।*
*रात की तनहाइयां दिल को दुखाती हैं,*
*किसी की मासूम सूरत याद आती है।*
*उसके तन की ख़ुशबुएं मन की महक बागेअदम,*
*गुलो-गुलशन के तरन्नुम महमहाती हैं।*

इसी प्रकार 'बारिश' और 'मुनासिब' जैसी ग़ज़लों में प्रकृति तथा ग्रामीण चित्रों की झलक देखी जा सकती है-

*बादल कुछ आवारा हैं, नदियां कुछ बलखायी हैं,*
*बारिश का आना देखो, क्या ख़ूब बदलियां छायी हैं।*
*घाटी के नीम धुंधलके में, पर्वत से गिरते हैं झरने,*
*पेड़ों की हिलती टहनी, पर छुपकर बैठी पुरवाई है।*
*रोटियां सेंकते मजदूर, चौगड्डे के कोने पर,*
*वही बैंगन का भुरता और मोटी रोटियां खोना।*

जादूगरनी रात का बुदबुदाना, बादलों का आवास होना, हिलती टहनी पर पुरवाई का छुपकर बैठना. जैसे प्रयोग कवि की कला-क्षमता और काव्यात्मक दृष्टि का परिचय देते हैं.

दुनिया के हालात देखकर ऋषिवंश का कवि-मन विचलित रहता है. यही बेचैनी कविता को जन्म देती है-

*सो जाती है दुनिया मैं जागा करता हूं,*
*कुछ सोचा करता हूं, कुछ रोया करता हूं।*
*बाहर कुछ अंदर कुछ ऐसी भी मजबूरी,*
*कुछ देखा करता हूं, कुछ गाया करता हूं।*

इन सबके बावजूद ग़ज़लकार ऋषिवंश चाहते हैं कि जीवन में ख़ुशियां ही ख़ुशियां हों. सर्वत्र हरियाली और प्रसन्नता हो. यही तो 'सर्वे भवंतु सुखिनः' का भाव है-

*वाह अरे वा' अहा! ज़िंदगी,*
*ख़ुशबू सी महमहा ज़िंदगी।*
*नन्हीं आशा के विराट पर,*
*नयी रोशनी नहा ज़िंदगी।*
*बड़े भोर की शुभ बेला पर,*
*चिड़ियों सी चहचहा ज़िंदगी।*

इस प्रकार इन ग़ज़लों में जीवन जगत के विविध रूप-रंग देखे जा सकते हैं जिन्हें ऋषिवंश ने सरल भाषा शैली में नये प्रयोगों के साथ बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है.

**१२-एमआईजी, चौबे कॉलोनी,**
**छतरपुर (म.प्र.)**

# व्यस्तता

✍ पंकज शर्मा

मैं कितना अभागा हूं.....
मैं क्या वे सभी अभागे हैं,
जो आज की इस व्यस्त दुनिया में
इतने व्यस्त हैं कि
एक पल के लिए ठहर कर
यह भी नहीं देख सकते कि
सुबह नन्हीं सी चिड़िया मुंडेर पर बैठ कर
कैसे चहचहाती है,
कि कैसे एक मासूम सा फूल खिल कर
सुबह अपनी पवित्र मुस्कान बिखेरता है,
या कि कैसे कोई बच्चा सुबह रोता हुआ
अपनी मां से स्कूल न जाने की
जिद करता है,
कि कैसे दोपहरी अलग-अलग ऋतुओं में अपने
अलग-अलग अंदाज पेश कर लुभाती है,
कि कैसे उदास सी सांझ को आकाश की लालिमा में
लौटते हैं पशु भी, पक्षी भी, मैं भी, तुम भी, सभी
अपने-अपने घरों में विश्राम को,
ताकि सुबह फिर एक नयी शुरुआत कर सकें
और इस तरह के न जाने कितने और
अदभुत, अनोखे, अनमोल वे छोटे-छोटे पल
जो नज़रों में होते हुए भी गुम हो गये हैं नज़रों से
जिनसे कभी पुलकित हो उठता था मन और
वो मिलता था आनंद कि जो आज किसी भी
उपलब्धि या प्राप्ति नहीं,
मैं कितना अभागा हूं....
मैं क्या वे सभी अभागे हैं.

✆ १९, सैनिक विहार, सामने विकास पब्लिक स्कूल, जंडली, अंबाला शहर-१३४००२

# ख़ुशी का सबब

✍डॉ. सीमा शाहजी

हमारा परिवार मांडव की यात्रा पर घर से प्रस्थान कर रहा था. चिंटू-मिंटू ममा-पापा, दादी-नौकर और मैं. छोटे-बड़े क़स्बों से बढ़ते हुए.... हमारी गाड़ी धीमी रफ़्तार से चली जा रही थी. एक क़स्बे से बाहर एक गुमटी पर गाड़ी रुकवायी गयी.

गुमटी मालिक बैठा था, सामने कांच की बर्नियों में बिस्किट.... पारले ...मौनेको.... नानखटाई.... सेव.... गांठिये.... चाकलेट वग़ैरह रखे थे. दो बेंच और कुछ कुर्सियां.... वेटर के नाम पर दस-ग्यारह वर्ष का लड़का था. पापा ने उसे स्पेशल चाय के लिए कहा और बच्चों को पूरी छूट दी कि वे अपनी पसंद अनुसार सामान ले लें. इधर ममा ने भी अपने खाने का पैकिट खोल दिया था.

हम सभी ने बढ़िया चाय पी. अपना सामान लिया और काम करनेवाले लड़के को रुपये दिये, वह अपने मालिक से पांच रुपये हमें देने वापस आया.

ऐसी जगह पर चूंकि टिप का प्रचलन नहीं होता, फिर भी पापा ने पांच रुपये लड़के की हथेली पर रख दिये. वह कुछ समझा नहीं वे पांच रुपये अपने मालिक को देने लगा.

मालिक ने हम लोगों की तरफ देखते हुए कहा, 'रख लो ये तुम्हें बाबू साहब ने दिये हैं.' लड़के ने उत्साहित होकर पार्ले ग्लुको बिस्किट का एक पैकेट बर्नी में से निकाला और मालिक को पांच रुपये देकर, बेंच पर बैठ गया और पैकिट खोलकर बिस्किट खाने लगा. उसे खाता देखकर हमें लगा कि हमारी टिप सार्थक हो गयी.

रास्ते में रिमझिम बारिश... हरियाली का फैला विस्तार... ठंडी हवाएं.... गंतव्य तक पहुंचने की ख़ुशी में वह वेटर लड़का भी हमारी ख़ुशी का सबब बन गया था.

✆ ३२५, म. गां. मार्ग, थांदला, झाबुआ (म.प्र.) ४५७७७७

नयी पौध

# पिसता आम आदमी

✍ जयदीप पाल 'दीप'

यह आम आदमी ही तो है,
यह हम, आप में ही तो है!
पिसता, घिसता, फिसलता....
समस्याओं में घिरता.
जीवन का चक्रव्यूह न भेद पाया,
कैसा दुर्भाग्य है पाया.
राशन की लंबी कतारों में खड़ा,
तपता, सड़ता, आस में खड़ा
उसकी भी बारी आयेगी....
जब चीनी, चावल की बोरी आयेगी.
रोज की कमाई पर जीता,
गम भुलाने के लिए पीता.
किराये का एक कमरा छोटा सा,
परिवार नहीं पर छोटा सा.
भर पेट भोजन क़भी सन नसीब हुआ,
मौत के बेहद करीब हुआ.
महंगाई ने है कमर तोड़ी,
कमाई की एक पाई न जोड़ी.
तंगी तले दब गया,
शोषण तले पिस गया.
आख़िर एक दिन हिम्मत हार गया,
फांसी के फंदे पर झूल गया...
यह कैसी कहानी?
जो न हुई पुरानी.
कल थी, आज है, कल रहेगी,
यही कहानी.

✆ १/१४२, तलैया लेन,
फतेहगढ़ (उ. प्र.) २०९६०१

१९७९ से 'कथाबिंब' के नियमित प्रकाशन

के लिए

हमारी शुभकामनाएं

-एक शुभेच्छु

*WITH BEST COMPLIEMENTS FROM:*

**ELECTROWELD INDUSTRIES**

*Mfgr. Machinery for welding*

*5, Hira Compound, Opp. Navjivan Society, R.C.Marg, Chembur, Mumbai-400 074.*
*Ph- 25270428/25272731 Fax : 25270428*
*Email : electroweld@hotmail.com, website: www.electroweld.com*

**कतरन**

# बाबू कैलाशनाथ स्मृति विज्ञान पुरस्कार प्रदान

**फर्रुखाबाद, ३ मई २०१० :** फतेहगढ़ के राजकीय इंटर कॉलेज के सभागृह में, सोमवार को वर्ष २००९ की हाई स्कूल परीक्षा में विज्ञान वर्ग में सर्वाधिक अंक पाने वाले छात्र हिमांशु मिश्रा को स्वर्गीय श्री कैलाशनाथ सक्सेना स्मृति पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया. समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' ने कहा कि इस नगर व कॉलेज ने उन्हें बहुत कुछ दिया है. इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने यह पुरस्कार प्रारंभ किया गया है. इस अवसर पर श्री राममोहन दास ने अपने बाबा स्वर्गीय श्री कैलाशनाथ सक्सेना के बारे में विस्तृत जानकारियां दीं.

उन्होंने कहा कि ऐसे पुरस्कारों से छात्रों में प्रतिस्पर्धात्मक भावना जागृत होती है. शहर के जाने-माने चिकित्सक डॉ. विजय मोहन दास ने कहा कि बदलते परिवेश में जीवविज्ञान व भौतिक विज्ञान की इंटीग्रेटेड शिक्षा की आवश्यकता है. इस ओर हमारी सरकारों को ध्यान रखना चाहिए.

श्री कैलाशनाथ की सुपुत्री श्रीमती संतोष बरतरिया ने सर्वाधिक अंक पाने वाले हिमांशु को स्मृति पुरस्कार के साथ पांच हजार रुपये नकद प्रदान किये. समारोह की अध्यक्षता कर रहे कॉलेज प्राचार्य डॉ. देवेंद्र स्वरूप सचान ने कहा कि कॉलेज में शिक्षा प्राप्त कर चुके कई छात्रों ने राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना स्थान बनाया है, इनमें से एक डॉ. माधव सक्सेना जी हैं. आप जैसे छात्रों ने कॉलेज को भी गौरवांवित किया है.

इस मौके पर श्री रवींद्र नाथ बरतरिया, श्रीमती मंजु सक्सेना, अरुणादास, डॉ. सपना दास, वीरेंद्र सिंह चंदेल, सुमन सक्सेना, योगेश्वर सहाय विद्यार्थी, रामलखन सिंह, वीरेंद्र सिंह सेंगर, एस. एस. मिश्रा, वेद प्रकाश सागर, गिरीश राजपूत, विनय अग्निहोत्री, समीउल्लाह सिद्दीकी, उप प्रधानाचार्य डी पी सिंह भी मौजूद थे.

**(अमर उजाला)**


***With Best Compliements From:***

# SUNRISE EARTH MOVERS

**Owners & Hirers of :**

* JCB- Dumpers Transport Contractors
* Telescopic Cranes/Crawler Crane P& H 335
* Excavator-Ex 200 Tata Hitachi/Rock Breaker
* Vibrator Road Roller/Excavator Ex-70 + Rock Breaker

**Shop No. 7 1/4, S.T.Road, Bezzola Complex, Nr. Suman Nagar, Chembur, Mumbai-71**
**(O) 65076629 TeleFax : 25222279 (R) 25224141 Mobile : 9323220668/9324628315**
**E-mail : sunrisecraneshirer@yahoo.co.in**

# बाबू कैलाशनाथ स्मृति विज्ञान पुरस्कार

बाबू कैलाशनाथ जी के चित्र को नमन करती हुई श्रीमती संतोष बरतरिया. साथ में हैं
डॉ. माधव सक्सेना, प्राचार्य श्री देवेंद्र सचान एवं कुर्सी पर विराजमान श्री रविंद्र नाथ बरतरिया.

बाबू कैलाशनाथ जी के परिवार के सदस्यों के साथ पुरस्कृत छात्र हिमांशु मिश्रा.
*बायें से : श्री वीरेंद्र सिंह चंदेल, श्री सुनील सक्सेना, डॉ. विजयमोहन दास, श्री रविंद्र नाथ बरतरिया, श्रीमती मंजु सक्सेना, डॉ. माधव सक्सेना, प्राचार्य श्री देवेंद्र स्वरूप सचान, श्री राममोहन दास, श्रीमती संतोष बरतरिया, श्रीमती (डॉ.) सपना दास, एवं श्रीमती अरुणा दास.*